विवेक शिखा

वर्ष–९ जून–१९९० अंक–६

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा–८४१ ३०१ (बिहार

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी० नागोरी –कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल –खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला – कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी –जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन बंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन –कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ –हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द— रामकृष्ण मठ,इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे— दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा– छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—दुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया –बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता—परौना, सारण (बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. दो भजन	सारदा तनय	२
३. तुम स्वयं प्रार्थना हो जाओ (सम्पादकीय सम्बोधन)		३
४. युवैव धर्मशीलः स्यात्	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	६
५. स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में	टाल्स्टाय	१०
६. आरती (कविता)	रामलषण शुक्ल	१३
७. उत्तर काशी मे दंडीताल	एक साधु	१४
८. आशा	स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती	२१
९. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२८
१०. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२६
११. वह धन्य हो जायेगा	श्री मोहन सिंह मनराल	२८
१२. दो लघु कथा	सुरेश कुमार मिश्र	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष – ६ जून—१९९० अंक – ६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा–८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

चिड़िया के घोंसले को यदि नष्ट कर दिया जाए तो वह उड़ती हुई आकाश का आश्रय लेती है। इसी प्रकार, यदि देह और जगत् का बोध चला जाए तो जीवात्मा मानो परमात्मा-रूपी आकाश में उड़ जाता है—समाधिमग्न हो जाता है।

(२)

कपूर के जलाने पर कुछ भी नहीं बचता। विचार का अन्त हो जाने पर समाधि होती है; उस समय 'मैं' 'तुम' 'जगत्' इन सब का चिह्नमात्र नहीं रहता, मन परब्रह्म में लीन हो जाता है।

(३)

जीव के मरे बिना शिव नहीं आता (अर्थात् जीवत्व के नष्ट हुए बिना शिवत्व प्राप्त नहीं होता)। फिर, शिव के शव बने सिवा माँ आनन्दमयी उसके वक्षःस्थल पर नृत्य नहीं करती (अर्थात् इस शिवत्व अभिमान का अतिक्रमण करने के बाद ही सर्वोच्च आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है)।

(४)

प्रेम के उत्पन्न हो जाने से मानो सच्चिदानन्द को बाँधने की डोर मिल जाती है। उन्हें देखने की इच्छा हुई कि डोर को पकड़ कर खींचा। जब पुकारो तभी पाओगे।

(१) मातृनाम तू गा मना

—सारदातनय

(मिश्र बिहाग—तीन ताल)

नित मातृनाम तू गा मना।
कह हृदय खोल मां-मां मना॥

क्यों तू जीवन वृथा गँवाए,
मृगतृष्णा के पीछे धाए
अब तो सुध में आ मना॥

सत्य सारदा-मां ही जग में,
स्मरण उसी का कर पग पग में।
मत अब ठोकर खा मना॥

चिर सुख-शांति चरण में मां के,
पा ले शीघ्र शरण में आके।
धन्य धन्य बन जा मना॥

●

(२) सुनलो मेरी बात

(आसावरी—तीनताल)

प्रभो अब सुन लो मेरी बात।
प्राणसखा जीवनधन तुम ही
मेरे गुरु पितु मात॥

चंचल यह मन फिर विषय-पवन
सदा करे आघात।
कैसे हो प्रभु ध्यान तुम्हारा
जो तुम ना दो साथ॥

ठाकुर तुम तो बहा रहे हो
कृपा-पवन दिनरात।
तान न पाऊँ पाल नाव का,
मुझमें नहीं बिसात॥

ना मैं, ना मैं, तुम ही तुम ही—
यह अनुभव दो नाथ।
मुझे बचा लो भवमाया से
आप पकड़कर हाथ॥

●

सम्पादकीय सम्बोधन

तुम स्वयं प्रार्थना हो जाओ

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

वह अक्टूबर का अंतिम सप्ताह था। देवतात्मा नगाधिराज हिमालय की, समुद्रतल से १४ हजार फीट ऊँची चोटी पर बितायी गयी वह रात आज भी मुझे रोमांचित-पुलकित करती है। बर्फ से आच्छादित हिमशिखर। अश्विन की चाँदनी रात। असह्य ठंढ। रात में कमरे से बाहर निकलना साहस नहीं, दुस्साहस का कार्य था। फिर भी, मैं लगभग आधी रात को उठा। कमरे से बाहर आया। उस दुग्ध-धवल निरंजन चाँदनी में पर्वत शृंगों पर फैली हिम राशि का वह अकलुष-अनाविल सौन्दर्य देखकर मैं तो अवाक् हो गया। सचमुच हिमालय चाँदनी रात में भगवान शंकर के अट्टहास की भाँति सुशोभित हो रहा था। सर्वत्र एक रहस्यपूर्ण नीरवता, एक विराट मौन, एक सम्मोहक निस्पन्दता। मुझे मौन के सम्मोहन की प्रथम अनुभूति हुई।

हाँ, वह हिमालय का मौन था, चुप्पी नहीं,। मौन और चुप्पी में अंतर है। एक बड़ा और गहरा भेद है। मौन में मन निस्पन्द रहता है। वह शून्य हो जाता है। मन का मरना ही मौन है। मन, जिसमें कोई कोलाहल न हो, कोई संकल्प-विकल्प न उठे, कोई इच्छा-तरंग न जगे, तो वह मर जाता है, श्मसान के समान प्रशान्त हो जाता है, मौन हो जाता है। चुप्पी में होंठ तो बंद रहते हैं पर मन अपनी समग्र चंचलताओं के ज्वार उठाता हुआ हमें उद्विग्न करता रहता है। चुप्पी एक कायिक या शारीरिक क्रिया है और मौन एक मानसिक स्थिति, एक आन्तरिक अवस्था।

जिसका मौन सध गया है, वह मुनि है। जिसका मन मौन में प्रतिष्ठित है, वह मुनि है। जो मौन की सुगंध से सिक्त-अभिषिक्त है, वह मुनि है। जो मुनि है, वही देवता है। वही देवतात्मा है। हिमालय अखण्ड मौन में प्रतिष्ठित है; इसी से हिमालय मुनि है, हिमालय देवता है, हिमालय देवतात्मा है। आश्विन पूर्णिमा की उस अर्धरात्रि में मैंने विराट् अखण्ड मौन में अवस्थित देवतात्मा हिमालय को अपने अन्तर्मन से प्रणाम किया था। उस प्रणाम की सुगंध, उस प्रणति-निवेदन का सम्मोहन, उस याचना शून्य आंतरिक नमन्-नमस्कार का संसार आज भी मुझमें रस-संचार कर रहा है।

उस रात हिमालय के वे ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े शृंग सब के सब एक मौन अनन्त प्रार्थना में लीन दीख पड़े थे। हिमालय के वे शान्त शिखर-समूह प्रार्थनारत मुनि की भाँति ही तो थे! सच पूछिए तो सारा हिमालय ही एक विराट् प्रार्थना है। और हिमालय ही क्यों यह सारा जगत ही एक विराट प्रार्थना है। प्रार्थना एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमें अनन्त प्रभु या ईश्वरीय शक्ति से जोड़ देती है। और इस जगत् में ऐसा क्या है जो अनन्त भावमय ईश्वर से जुड़ा हुआ नहीं है। प्रार्थना शब्दों में नहीं है, प्रार्थना स्वर की मधुरिमा में नहीं है। प्रार्थना कंठों के संगीत और अंगों के नर्तन में नहीं है। वह तो एक मौन-अमुखर ईश्वर से संबंध में है। किन्तु हर शब्द प्रार्थना है। हर स्वर-झंकार एक प्रार्थना है,

हर कंठ-संगीत, अंग-लय एक प्रार्थना ही तो है ! जो हमें परमात्मा से जोड़े वह प्रार्थना है। जो हमें अभय में रखे वह प्रार्थना है। जो हमें शान्त समरस, अनुद्विग्न, अचाह और आनन्दमय बनाये वह प्रार्थना है।

मुझे भगवान् बुद्ध का स्मरण होता है। वे प्रार्थना की बात नहीं करते। वे किसी मान्यताप्राप्त या परम्परागत प्रार्थना या क्षण विशेष में की जानेवाली प्रार्थना को नहीं स्वीकारते। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वे प्रार्थना के अस्तित्व को ही नकारते हैं। नहीं, वे अखिल ब्रह्मांड को ही एक प्रार्थना मानते हैं। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी का विश्लेषण कितना सटीक है ! वे अमेरिका के डिट्रायट नगर में दिये गये अपने एक भाषण में कहते है—

"मनुष्य अपने भीतर असीम शक्ति रखता है, और वह उसे प्राप्त कर सकता है– वह अपने को असीम आत्मा के रूप में सिद्ध कर सकता है। ऐसा किया जा सकता है, लेकिन उसमें तुम विश्वास नहीं करते। तुम ईश्वर से प्रार्थना करते रहो और अपनी बारूद सर्वदा सूखी रखो।

"बुद्ध ने इसके ठीक विपरीत शिक्षा दी। लोगों को रोने न दो, उनके पास इस प्रार्थना इत्यादि का कुछ भी न रहने दो। ईश्वर दूकान खोले नहीं बैठा है। हर साँस के साथ तुम ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हो। मैं बोल रहा हूँ; यह भी एक प्रार्थना है। तुम सुन रहे हो; एक प्रार्थना यह भी है। क्या तुम्हारा कोई मानसिक या शारीरिक व्यापार कभी ऐसा भी होता है, जिसमें तुम असीम दैवी शक्ति में भाग न लेते हो ? यह सब एक अविच्छिन्न प्रार्थना है। यदि तुम शब्दों के एक विन्यास मात्र को ही प्रार्थना कहते हो तो तुम प्रार्थना को छिछला बना डालते हो। ऐसी प्रार्थनाओं से अधिक लाभ नहीं होता' कोई वास्तविक फल उनसे शायद ही निकलता हो।

"क्या प्रार्थना कोई जादू का मंत्र है जिसका जप करने से बिना कठिन श्रम किये तुमको चमत्कारिक फल प्राप्त हो जायगा ? नहीं। सबको कठिन श्रम करना है; सबको उस असीम शक्ति की गहराइयों में पहुँचना है। गरीब के पीछे, अमीर के पीछे, वही असीम शक्ति है। ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति तो कठोर श्रम करे और दूसरा कुछ शब्दों का जप करके फलों को प्राप्त कर ले। यह विश्व एक अविच्छिन्न प्रार्थना है। यदि तुम प्रार्थना को इस अर्थ में ग्रहण करते हो तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। शब्द आवश्यक नहीं हैं। मूक प्रार्थना श्रेष्ठतर है।" (वि० सा० ७/२०९)

यह बुद्ध का ढंग है। वे प्रार्थना की सत्ता को तो स्वीकारते हैं पर उसकी प्रक्रिया में उनका मतान्तर है। ईराक और ईरान में इन दिनों जो युद्ध हो रहे हैं उनमें दोनों देशों के नागरिक मुसलमान हैं। दोनों देश के नागरिक प्रशासक और सैनिक अपने अपने देशों में खड़ी मस्जिदों में नमाज करते हैं, खुदा से प्रार्थना करते हैं कि दूसरे देश का नाश हो। यह प्रार्थना है या पशुता की पुकार ?

द्वितीय विश्व युद्ध में इंग्लैण्ड और जर्मन के बीच युद्ध चल रहा था। दोनों ईसाई धर्मावलम्बी देश। दोनों देशों के गिरिजाघरों में नागरिक मोमबत्ती जलाकर और घंटे बजाकर एक ही ईश्वर से, प्रभु यीशु से, अपनी विजय और दूसरे देश की पराजय की प्रार्थना करते थे और बमगिराते थे।

अणुबम का निर्माण करने वाला वैज्ञानिक ओपेनहाइमर जब अणुबम का प्रथम परीक्षण करने गया तो उसने प्रभु से प्रार्थना की थी इसकी सफलता के लिए। और हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराने के पूर्व भी गिरानेवाले सैनिक ने प्रभु यीशु से क्षमा के लिए प्रार्थना की थी। यह प्रार्थना का दुरुपयोग है। यह प्रार्थना नहीं है। यह प्रार्थना के नाम पर एक छलावा है।

हमारी विडम्बना यह है कि हम शक्ति तो परमात्मा में मानते हैं पर बुद्धि अपने में। प्रभु को हम शक्तिमान मानते हैं और स्वयं को बुद्धिमान। इसीलिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं – प्रभु हमें पुत्र दो, धन दो, नाम-यश दो आदि-आदि। अर्थात् पुत्र, धन आदि देने की शक्ति तो प्रभु में है पर उसे क्या देना चाहिए इसका निर्णय हम स्वयं करते हैं। इससे खतरा पैदा हो जाता है। कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। नारद विश्वमोहिनी को प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। विश्वमोहिनी उनके लिए नहीं है। वे मुनि हैं, उन्होंने काम पर विजय पायी है। यह सब वे भूल जाते हैं और प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपनु रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥

अर्थात् नारदजी ने) आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनायी (और प्रार्थना की कि) कृपा कीजिए और कृपा करके मेरे सहायक बनिए, हे प्रभो आप अपना रूप मुझको दीजिए; और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता। (मानस १/१३१/३) तात्पर्य यह कि नारद यह तो मानते हैं कि शक्ति भगवान में है पर उन्हें नारद के लिए क्या करना चाहिए इसका निर्णय उन पर नहीं छोड़ते। वे उनसे अपना रूप देने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि नारद को लगता है कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से वह कन्या उन्हें नहीं मिल सकती। परिणाम ! प्रभु ने उन्हें बन्दर का रूप दे दिया। नारद का क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। पर प्रभु शक्तिमान ही नहीं बुद्धिमान भी हैं। अतः जिसमें नारद का हित होना है, प्रभु वही करते हैं।

यह कथा बड़ी शिक्षाप्रद है। प्रभु वही करते हैं जिसमें हम सबका परम हित, परम मंगल छिपा है। तात्कालिक बुद्धि के कारण ही हम निराश, क्रुद्ध या क्षुब्ध हो जाते हैं और यह मान लेते हैं कि हमारी प्रार्थना नहीं सुनी गयी। यही हमारा भ्रम है।

हमारी प्रार्थना निष्काम होनी चाहिए। जैसे निष्काम होने पर हमारा हर कर्म योग हो जाता है उसी भाँति निष्काम होने पर हमारी प्रार्थना भी योग हो जाती है, यज्ञ हो जाती है। और हमारी यह प्रार्थना पल-पल होती रहे। हमारी हर क्रिया प्रार्थना बन जाय।

माला फेरना, होंठो से बुदबुदाकर जप करना या जोरों से गान करना प्रार्थना नहीं है। कबीर कहते हैं –

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माँहि।
मनवां तो चहुँ दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहि॥

मन जब जगत से जुड़ता है तो कामना और वासना उपजती है। मन जब जगदाधार से जुड़ता है—प्रभु से जुड़ता है तब प्रार्थना जनमती है। जगत के लिए, जागतिक या सांसारिक विषयों के लिए की जाने वाली प्रार्थना किसी की हत्या करने में सफलता प्राप्त करने के लिए की जानेवाली प्रार्थना की भाँति ही है।

हमारी प्रार्थना प्रायः वाचिक होती है—शाब्दिक होती है। हम कंठ-स्वरों की मधुरिमा पर भरोसा करते हैं। किन्तु प्रार्थना लय में नहीं, विलय में है, अर्जन में नहीं विसर्जन में है, भरने में नहीं, स्वयं को रिक्त कर देने में है। प्रार्थना आत्मार्पण की भूमिका है। प्रार्थना आत्मबलि की प्रक्रिया है। प्रार्थना प्रभु को अहैतुकी कृपा पर एकान्त निर्भर रहने की प्रस्तुति है। प्रार्थना इसीलिए, कोई क्रिया नहीं बल्कि एक अवस्था है। प्रभु के प्रेम-सिन्धु में डूबने उतराने की मनोदशा का नाम प्रार्थना है। यह वह अवस्था है जहाँ प्रार्थी का अपने आप में, निज के रूप में कुछ नहीं रह जाता। वह परमात्मा, केवल परमात्मा के आश्रित हो सदैव उनसे अपने को जुड़ा हुआ अनुभव करता है। इस अवस्था में शब्द चूक जाते हैं, वाणी रीत जाती है। रह जाती है केवल अनुगूंज, एक अनुरणन ध्वनि-तरंग अथवा वह भी नहीं। बस—

रोम रोम पिउ-पिउ करे मुख की श्रद्धा नाहिं।

वस्तुतः जब भी कोई शब्द, कोई दृश्य, कोई रूप, कोई नाम हमें प्रभु के निकट ले जाए तब हम प्रार्थना में होते हैं। इसी से मुझे लगता है कि प्रार्थना की नहीं जाती, प्रार्थना हुई जाती है।

भगवान बुद्ध, इसा मसीह, मोहम्मद साहब, गुरु नानक देव, भगवान रामकृष्ण आदि स्वयं में एक मूर्त प्रार्थना हैं, एक साकार प्रार्थना हैं। आप भगवान बुद्ध, यीशु, गुरू नानक और भगवान श्रीरामकृष्ण देव—इनमें से किन्हीं की तस्वीर या प्रतिमा को देखें, आपको लगेगा—यह नर-छवि या नर-मूर्ति नहीं है, यह तो प्रार्थना की ही एक छवि है, एक विग्रह हैं, प्रार्थना की ही एक भंगिमा एक मुद्रा है।

हम जब श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीबुद्ध या महा प्रभु चैतन्य, गुरु नानक देव, भगवान श्रीरामकृष्ण आदि में से किन्हीं एक की प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मात्र शाब्दिक, वाचिक या कायिक न हो बल्कि, कम से कम प्रार्थना के क्षणों में हम स्वयं अपने इष्ट से एकाकार हो जायँ। जुड़ जायँ उनसे और उनकी परम चैतन्य सत्ता से और इस प्रकार प्रार्थी का केंचुल उतार कर हम स्वयं एक प्रार्थना हो जाएँ, प्रार्थना में अवस्थित हो जाएँ।

भगवान श्रीरामकृष्ण हमें प्रार्थना में नित्य प्रतिष्ठित रखें- यही उनसे मेरी आंतरिक प्रार्थना है।

जय श्रीरामकृष्ण।

❀

समग्र संगीत के भीतर 'सोऽहं, सोऽहं' एक यही स्वर बजता है, अन्य सभी स्वर उसी के विभिन्न रूप मात्र हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

युवैव धर्मशीलः स्यात्

—स्वामी ब्रह्मानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक नामक द्विज ने एक बार एक ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें सर्वस्व का दान किया जाता है। इस यजमान का नचिकेता नामक एक पुत्र था। अभी वह कौमारावस्था में ही था, लेकिन जब उसने दक्षिणा के लिये ले जायी जा रही ऐसी वृद्ध, दूधरहित, दुर्बल और सभी प्रकार से तेजहीन गायों को देखा तो उसमें श्रद्धा का आवेश हुआ और वह सोचने लगाः "ऐसी बन्ध्या और दूध देने में असमर्थ वृद्ध गायों का दान करने वाला व्यक्ति आनन्द-रहित लोकों को जाता है। तब वह अपने पिता के पास जाकर बोला, "हे तात, आप मुझे किस को देंगे ?" यह प्रश्न उसने तीन बार दुहराया। इस पर क्रुद्ध होकर पिता ने कहा, "मैं तुझे मृत्यु को दूँगा।" पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर नचिकेता एकान्त में अनुताप कर सोचने लगा; "मैं बहुत से शिष्यों या पुत्रों में तो प्रथम हूँ, बहुत में मध्यम हूँ, लेकिन मैं अधम वृत्ति से कभी नहीं रहता। ऐसे में भी पिता ने मुझे ऐसा अभिशाप क्यों दिया ?" इधर उसके पिता यह सोचकर कि "मैंने क्या कह डाला ?" शोकातुर हो रहे थे। नचिकेता ने उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा कि आप अपने पूर्व पुरुषों एवं वर्तमान महापुरुषों के सत्यनिष्ठ आचरण की ओर देखिए, एवं मुझे आपके सत्य की रक्षा करने की अनुमति दीजिए क्योंकि कोई अजर-अमर नही होता। मनुष्य खेती की तरह पकता और खेती की भाँति उत्पन्न होता है।"

कठोपनिषद् नामक प्रसिद्ध एवं काव्यपूर्ण उपनिषद् का प्रारंभ इस छोटे से कथानक से होता है। पाठक के मन को आकृष्ट करने, उसमें विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने और जटिल विषय को सहजबोधगम्य बनाने के लिए कथाओं का उपयोग किया जाता है। सामान्यतः इन ग्रन्थों में कथा तथा उनके पात्रों की गौण भूमिका बस इतनी ही होती है, कि वह पाठक को तत्वचिन्तन तक पहुँचा देते हैं। लेकिन कहीं कहीं, पात्रों के चरित्र सांकेतिक रूप में उन तत्वों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं, जिनका वर्णन ग्रन्थ में किया गया हो। कठोपनिषद् में भी ऐसी ही बात है। कथा आगे बढ़ती है और नचिकेता यमराज के पास पहुँच कर उनसे जीवन के रहस्य के सम्बन्ध में, परमतत्व विषयक प्रश्न करते हैं। आगे का समग्र ग्रन्थ यमराज का उत्तर ही है। प्रारंभ में ही यमराज कहते हैं कि यह तत्वज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है, सुनने को ही नहीं मिलता। सुनने पर भी समझना कठिन है। क्योंकि इसका वक्ता और गुरु और शिष्य और श्रोता दोनों को ही अद्भुत् अथवा विशेष होना चाहिए।

"आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो
ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

वस्तुतः यमराज और नचिकेता दोनों ही इसी प्रकार के श्रेष्ठ गुरु और शिष्य थे। आइए, कथा में वर्णित तथ्यों के आधार पर नचिकेता के उन गुणों का अवलोकन किया जाय जिनके कारण वे वेदान्त के उत्तम अधिकारी हो सके।

१. कौमार अवस्था :

नचिकेता के लिये 'कुमार' शब्द का प्रयोग कर मानो यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि वह बाल्यावस्था को समाप्त कर यौवन की देहली पर खड़ा है। अब वह बालवत् मूढ़ नहीं है, उसमें बुद्धि का प्रथम विकास हो चुका है, तथा यौवन की उच्छृंखलता का आगमन नहीं हुआ है। उसका मन तरोताजा, पवित्र, तेजपूर्ण और सजग है। व्यक्ति के जीवन का यह अन्तरिम काल, जब वह बाल्यावस्था को त्याग कर यौवन के पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होता है, अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अधिकांश लोगों की जीवन दिशा इसी काल में निर्धारित हो जाती है। नवीनता का इच्छुक एवं जिज्ञासु, विकासोन्मुख मन, इस वय में, भली या बुरी, सांसारिक अथवा आध्यात्मिक, जिस दिशा में मुड़ता है, वह उसके जीवन की दिशा बन जाती है। यही वह उम्र है जब व्यक्ति पहली बार स्वतंत्र चिन्तन करना प्रारंभ करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह अध्ययन महत्वपूर्ण है ही। सौभाग्य से यदि इस आयु में किसी युवक को सत्संग प्राप्त हो जाय तो उसके उत्तम चरित्रवान होने में कोई संशय नहीं रहता। यह उम्र खतरनाक भी है। बलवान इन्द्रियाँ बाह्य प्रलोभनों के कारण मन को अधोगामी भी इसी कोमल-अवस्था में कर डालती हैं। कुसंग न जाने कितने प्रतिभावान् युवकों को इसी उम्र में नष्ट कर डालता है। अतः सभी माता-पिताओं का यह कर्त्तव्य है कि इस उम्र में अपनी सन्तानों को यही मार्ग दर्शन एवं सत्संग प्रदान करने का प्रयत्न करें तथा इस बात का विशेष ध्यान रखें कि वे कुसंग में न पड़ जायें।

यम और नचिकेता की यह कहानी तो आखिर कहानी ही है, लेकिन प्रत्यक्षतः भी हम महापुरुषों एवं आचार्यों के जीवन में पूर्वोक्त सत्य के प्रमाण स्वरूप अनेक दृष्टान्त पाते हैं। श्रीरामकृष्ण के पास युवा व वृद्ध दोनों ही प्रकार के जिज्ञासु आते थे, लेकिन उन्होंने अपने अतरंगों के रूप में ऐसे युवकों को ही चुना जिनकी उम्र १४ से १८ वर्ष के बीच थी। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि इस कम उम्र में मन बिखरा नहीं होता। वह सांसारिक आकर्षणों एवं जिम्मेदारियों आदि के द्वारा विक्षिप्त नहीं हुआ होता है। सांसारिक का मन बिखरे हुए सरसों के दानों की तरह होता है जिनको इकट्ठा करना अत्यन्त कठिन होता है। विवाह होने पर सारा मन पति या पत्नी में चला जाता है। सन्तान होने पर वह सन्तान में जाकर और बंट जाता है। फिर ईश्वर में लगाने के लिए बचता ही कितना है? यही कारण है कि सभी आचार्य कम उम्र में ही साधना का आरंभ करने का सुझाव देते हैं। एक बार कौमार अवस्था के कोमल मन पर यदि शुभ चिन्तन और शुभ आचरण की छाप पड़ जाये तो वह फिर स्थायी हो जाता है। शुभ आदतों का निर्माण कम उम्र में बहुत आसान होता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ यह कार्य कठिन से कठिनतर होता जाता है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का कथन है कि तीस वर्ष की उम्र तक जितनी साधना करनी हो, कर लेनी चाहिए, उसके बाद यह संभव नहीं है। अगर तीस वर्ष की आयु तक साधना समाप्त करने की बात स्वीकार की जाये तो यह युक्तियुक्त ही है कि उसका प्रारंभ कौमारावस्था में ही कर देना चाहिए। खेल कूद के क्षेत्र में भी प्रायः यह देखा जाता है कि खिलाड़ी ३०-३५ वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते अपनी क्षमता खोने लगता है। भले ही मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसी बात नहीं हो, पर यह तो सत्य ही है कि यही वय साधना की सर्वश्रेष्ठ उम्र है।

प्रसंगतः पौढ़ एवं वृद्धावस्था के पाठकों के मन में उठ रहे प्रश्न का समाधान कर देना भी उचित होगा उपर्युक्त कथन से संभवतः वे प्रश्न करेंगे, कि

ऐसी स्थिति में क्या हम ज्ञानाधिकारी नहीं हो सकते ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त कथन का उद्देश्य साधना को यथाशीघ्र प्रारंभ करना है। कभी यह सोचने की भूल न करें कि जवानी में संसार का सुख ले लूं, वृद्धावस्था में निवृत्त होकर निश्चिन्तता से भगवद्-भजन करूँगा। ऐसा कभी नहीं हो पाता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अगर किसी कारण से साधना का प्रारंभ यौवन में न कर पाये हों तो बाद में इसकी संभावना ही नहीं रहती है। कहावत है "It is never too late" अर्थात् इस कार्य में कभी देर नहीं है। जब प्रारंभ कर सकें तभी अच्छा है। प्रसिद्ध ईसाई सन्त ब्रदर लारेंस की एक वृद्धा को लिखी बात इस सन्दर्भ में अत्यन्त उपयुक्त है। वे लिखते हैं "मैं अस्सी वर्ष का हूँ और तुम साठ वर्ष की। फिर भी देर नहीं हुई है। अब साधना भगवद्भजन प्रारंभ करो। संभवतः प्रभु अपनी कृपा वर्षण के लिए हमारे एक दृढ़ संकल्प की प्रतीक्षा कर रहे हों।" और फिर पुनर्जन्म में विश्वासी के लिए तो अगले जन्म की अपेक्षा इस जन्म की वृद्धावस्था में साधना का प्रारंभ समयानुकूल ही है अगर कुछ भी न हो तो भी, कम से कम एक संस्कार तो पड़ेगा ही जो अगले जन्म में काम आयेगा।

कुछ लोगों के लिए तो यौवन के बाद ही साधना का प्रारंभ संभव हो पाता है। एक किशोर एक महात्मा के पास जाया करता था। बालक की अध्यात्म में गहरी रुचि थी। गुरु के सान्निध्य में उसकी इस रुचि में वृद्धि भी हुई और उसने संसार त्याग कर साधना में पूर्ण मनोनिवेश करने की अनुमति मांगी। गुरुजी ने इसकी आज्ञा न देकर उसे कुछ वर्षों बाद ऐसा करने को कहा। वह किशोर यौवन में प्रविष्ट हो, पढ़ लिख कर एक सफल वकील बना, धन कमाया एवं संसार के भोग में गहरा डूब गया। एक सामान्य संसारी व्यक्ति की तरह नैतिक-अनैतिक सभी प्रकार के आचरण करता रहा। यहाँ तक कि धर्म विमुख और साधु सन्तों की अवज्ञा भी करने लगा। कई वर्ष बीत गये। प्रौढ़ावस्था में अचानक एक दिन उसके पास उसके गुरु के एक संन्यासी शिष्य आये तथा उसके तिरस्कारों के बावजूद उसे अपने साथ गुरु के सान्निध्य में ले गये। गुरु की कृपा एवंसद्-र्शन से उसको पूर्व स्मृति जागृत हो गयी और वह अपने दुष्कर्मों के लिए लज्जित हुआ। तब उसने गुरुदेव से पूछा कि उन्होंने उस किशोर वय में साधना करने से क्यों रोका ? यदि वे उसे उस समय संसार त्याग कर साधना करने देते तो उसकी यह अधोगति नहीं होती। गुरुदेव ने इसके उत्तर में कहा कि उन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि से उसके प्रबल भोग-संस्कारों को देख लिया था। यदि वे उसे उस समय संन्यास की आज्ञा देते तो वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ होता, और पतन के सिवा और कोई परिणाम नहीं होता। लेकिन अब वे सारे कुसंस्कार फलित हो चुके हैं। उनके लिये अनुशोचना करने की भी आवश्यकता नहीं है, न ही, उन्हें अधोगामी होने का लक्षण मानना चाहिये। कोई प्रायश्चित भी आवश्यक नहीं है। बस, अब साधना में लग जाओ केवल, स्वेच्छा से उन कुकर्मों की पुनरावृत्ति न करो।

उपनिषदों में जहाँ नचिकेता जैसे किशोर का अधिकारी के रूप में वर्णन है, वहीं जनक जैसे वयोवृद्ध राजा, अश्वलायन, भरद्वाज, सत्यकामादि अग्निहोत्री गृहस्थों एवं देवराज इन्द्र का भी उल्लेख किया गया है। अधिकारी के लक्षणों में वय का उल्लेख भी नहीं है। अतः साधन-चतुष्टय सम्पन्न किसी भी उम्र का व्यक्ति ज्ञानाधिकारी हो सकता है।

इस सन्दर्भ में एक और विषय की चर्चा की जा सकती है, और वह है, ज्ञान में नारियों का अधिकार। आचार्य शंकर विवेक चूड़ामणि ग्रन्थ में अनेक दुर्लभ सौभाग्यों की गणना करते हुए

नरत्व को उनमें से एक के रूप में गिनाते हैं। कुछ लोगों की यह गलत धारणा है कि नारियाँ वेदान्तोक्त तत्वज्ञान की अधिकारी नहीं हो सकतीं। उनका तर्क यह है कि भाव प्रवण, कोमल हृदय एवं सहज आसक्ति में लिप्त होने वाली नारी कठोर, वैराग्य-भित्तिक ज्ञानमार्ग की अधिकारी नहीं हो सकती। इस धारणा का खंडन स्वयं उपनिषद् ही करते हैं। जनक की तत्व-सभा में गार्गी भी थीं, जिन्होंने तत्वज्ञ याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था। उनसे प्रश्न पूछते हुए गार्गी ने कहा था कि मैं तीक्ष्ण बाणों की तरह दो प्रश्न इनसे पूछती हूँ, और यदि ये इनके उत्तर देने में समर्थ होंगे तो इन्हें और कोई हरा नहीं सकेगा। इन्हीं याज्ञवल्क्य ने अपनी भार्या मैत्रेयी को ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी जान कर ज्ञान का उपदेश दिया था। अतः सामाजिक दृष्टि से कुछ असुविधाओं के होते हुए भी नारियाँ ज्ञान की अधिकारिणी हो सकती हैं।

❋❋❋

टाल्स्टाय की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द

—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (म० प्र०)

स्वामी विवेकानन्द की कृतियों के साथ टॉल्स्टाय का प्रथम परिचय १८९६ ई० के सितम्बर में हुआ। इन्हीं दिनों एक भारतीय विद्वान् अनेद्र कुमार दत्त ने उसी वर्ष न्यूयार्क से प्रकाशित स्वामीजी का 'राजयोग पर व्याख्यान' ग्रंथ टॉल्स्टाय को उपहारस्वरूप भेजते हुए लिखा—

"आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमें प्राप्त होने वाली प्राचीनतम भारतीय दर्शन की चरम उपलब्धियों के साथ आपके सिद्धान्तों का पूर्ण सामंजस्य है।" इसके उत्तर में १३ सितम्बर को टॉल्स्टाय ने लिखा—"आपका पत्र और पुस्तक दोनों ही मुझे प्राप्त हुए, इसके लिए आप मेरा विशेष धन्यवाद स्वीकार करें। ग्रन्थ अत्यन्त विलक्षण है और इससे मुझे काफी शिक्षा मिली है। इसमें निरूपित आत्मा का वास्तविक स्वरूप, अर्थात् उस सिद्धान्त का दार्शनिक पक्ष अति सुन्दर है। मानवजाति अब तक जीवन के बारे में सच्चे, उदात्त और स्पष्ट धारणा से बारम्बार पीछे हटती जा रही है, पर वह कभी भी उसके दायरे से बाहर नहीं जा सकी।" अगले दिन उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—"इस दौरान मुझे एक हिन्दू का पत्र और भारतीय प्रज्ञा की एक मोहक पुस्तक प्राप्त हुई।"

इसके बाद कई वर्षों तक उन्हें स्वामीजी की अन्य कोई भी पुस्तक पढ़ने को नहीं मिली। इस बीच उन्होंने मैक्समूलर लिखित 'रामकृष्ण और उनकी उक्तियाँ' ग्रंथ के कुछ अंश पढ़े और उन्हें 'प्रतिभावान ज्ञानी पुरुष' और उनकी उक्तियों को अद्भुत् माना। पर लगता है उस समय उन्हें ज्ञात न था कि विवेकानन्द उन्हीं के शिष्य हैं।

स्वामीजी के अन्यान्य ग्रन्थों के साथ टॉल्स्टाय का अन्तरंग परिचय लगभग बारह वर्ष बाद अर्थात् १९०८ ई० में हुआ। इस बार विवेकान्द-वाङ्मय के साथ उनका परिचय एक रूसी लेखक आइ० एफ० नस्जीविन ने कराया। नस्जीविन ने स्वामीजी के दो लेखों 'मेरे गुरुदेव' तथा 'ईश्वर और मानव'

एवं 'नासदीय सूक्त' कविता का रूसी भाषा में अनुवाद किया था। टॉल्स्टाय ने अपने ७ जुलाई १९०७ के पत्र में नस्जीविन से अनुरोध किया— "उस ब्राह्मण (हिन्दू) की लिखी पुस्तक मुझे भेजें। ऐसी पुस्तकें पढ़ने में परम आनन्द का बोध होता है, आत्मा का उन्नयन होता है।" १९०८ ई० में नस्जीविन का ग्रन्थ 'Voices of People' (लोकवाणी) प्रकाशित हुआ जिसमें स्वामीजी का 'ईश्वर और मानव' लेख तथा उपर्युक्त कविता का रूसी अनुवाद भी संकलित हुआ था। जिसे प्राप्त होते ही टॉल्स्टाय ने पढ़ा और नस्जीविन के नाम अपने ९ मार्च १९०८ ई० के पत्र में लिखा — "आपकी Voices of People नामक अद्भुत पुस्तक मैंने अभी-अभी पढ़ कर समाप्त की है और इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ।" अगले दिन उन्होंने अपनी डायरी में लिखा— "कल मैंने हिन्दू का वह अद्भुत लेख पढ़ा, जिसका नस्जीविन ने रूसी भाषा में अनुवाद किया है। उसमें मेरे अपने विचारों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति है।" फिर १२ मार्च को वे पुनः नस्जीविन को लिखते हैं - हिन्दू के उस लेख ने मेरे मन को बड़ा प्रभावित किया है। वह (लेख) असाधारण रूप से अच्छा है।"

अब टॉल्स्टाय ने स्वामीजी के अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त करने और पढ़ने का प्रयास किया। उन्हें यह पता चला कि श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के बीच क्या सम्बन्ध है। २५ मई १९०८ को उन्होंने डी० पी० मैकोवित्सकी को बताया कि उस दिन उन्होंने विवेकानन्द ग्रन्थावली के दो खण्ड पढ़, जो कि उन्हें उसी दिन प्राप्त हुए थे और कहा, "उनमें ईश्वर, आत्मा मानव और धर्मों की एकता विषयक अद्भुत गहन विचार हैं। वे रामकृष्ण के शिष्य हैं, जिनका १९०२ ई० में देहान्त हुआ।'

अब से टॉल्स्टाय स्वामीजी के ग्रन्थों का गम्भीर और सोत्साह अध्ययन करने लगे। वे पुस्तकों पर उसके महत्वपूर्ण अंशों को रेखांकित करते और जो अंश उन्हें विशेष प्रभावित करते उन्हें अपनी नोट बुक में लिख लेते। टॉल्स्टाय १९०८ के जून में विवेकानन्द साहित्य के अध्ययन डूबे हुए थे। इस काल का किंचित विवरण हम उनकी तथा मैकोवित्स्की की डायरी से उद्धृत करेंगे।

५ जून के दिन उन्होंने मैकोवित्स्की से कहा— "सुबह छह बजे से ही मैं विवेकानन्द के बारे में सोच रहा हूँ। कल दिन भर विवेकानन्द के ग्रन्थ पढ़ता रहा। उनमें बुराई का प्रतिरोध करने हेतु हिंसा का सहारा लेने के औचित्य पर एक अध्याय है। बड़ी ही प्रतिभापूर्वक लिखा गया है।"

२१ जून को वे वी० जी० चेरट्कोव के साथ स्वामीजी के 'कृष्ण' विषयक प्रबन्ध पर चर्चा करते रहे। टॉल्स्टाय ने कहा—"कृष्ण कभी-कभी बुराई के बदले भलाई करने का आदेश देते हैं और कभी कभी बुराई करनेवाले का वध करके, उसे पुनर्जीवन देकर, जीवन के आनन्द की अनुभूति कराते हैं।"

२६ जून को मैकोवित्स्की लिखते हैं—"स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली के तीन खण्डों में से एक हाथ में लिए हुए काल टॉल्स्टाय हाल में आये। टॉल्स्टाय ने कहा, 'उत्तम ग्रन्थ है! बारम्बार पढ़ने योग्य इसमें कितने ही विचार हैं।' और बाद में, जब मैं उनका सिर सहला रहा था, वे विवेकानन्द का ग्रन्थ पढ़ते रहे और उसके कुछ वाक्यों को रेखांकित किया।" उस दिन टॉल्स्टाय ने अपनी डायरी में लिखा - "आज प्रथम बार विवेकानन्द के उस कथन की सत्यता की संभावना का बोध हुआ कि 'मैं' को पूर्णरूप से 'तुम' में विलीन किया जा सकता है; यह भी बोध हुआ कि आत्मत्याग किसी विशेष उद्देश्य से नहीं अपितु सत्य के ज्ञान के द्वारा करना होगा। अपने स्वयं और अपने 'अहं' भाव के प्रति भयंकर आसक्ति से बच निकलना परम कठिन और परम आवश्यक है। और मुझे अब अपनी मृत्यु के पूर्व, अपने, 'अहं'

त्याग की सम्भावना का बोध होने लगा है। वह (अहं) कोई सद्गुण नहीं है।"

४ जुलाई १९०८ को टॉल्स्टाय ने अपनी डायरी में लिखा—"ईश्वर विषयक विवेकानन्द का लेख पढ़ा—अति उत्तम है। इसका अनुवाद होना चाहिए। वह विषय मेरे मन में भी उदित हुआ था।"

१७ अगस्त को उन्होंने अपना 'धर्म और विज्ञान' लेख पूरा किया जिसमें उन्होंने विश्व के अन्य ऋषियों एवं विचारकों के साथ ही महान स्वामीजी की विरासत को भी आत्मसात करने का अनुरोध किया है।

१६ फरवरी १९०९ के दिन टॉल्स्टाय को स्वामीजी की ग्रन्थावली का एक अन्य खण्ड प्राप्त हुआ, जो एक भारतवासी ने उन्हें उपहार के रूप में भेजा था। मैकोवित्स्की ने लिखा है कि टॉल्स्टाय ने इसे पढ़ा और पहले के अन्य खण्डों की भाँति ही खूब पसन्द किया। टॉल्स्टाय को प्राप्त होने वाली स्वामीजी की यही अन्तिम पुस्तक थी।

७ मई को उन्होंने अपने प्रकाशक पोस्रेदनिक पब्लिशिंग हाउस के सम्पादक से कहा—"आधुनिक भारतीय विचारकों में सर्वप्रमुख हैं विवेकानन्द और उनके ग्रन्थों का (रूसी भाषा में) प्रकाशन होना चाहिए।" इसके कुछ ही दिन पूर्व टॉल्स्टाय ने अपने 'शिक्षा' विषयक निबन्ध में सुकरात, रूसो और काण्ट आदि विश्व के प्रमुख विचारकों के साथ स्वामीजी का भी उल्लेख किया है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के रूसी दार्शनिक रचनाओं के सुप्रसिद्ध संकलन 'वेखी' के बारे में टिप्पणी करते हुए उन्होंने २४ जून को लिखा—"जब पढ़ने के लिए रामकृष्ण, बुद्ध, विवेकानन्द, बाइबिल ··· जैसी चीजें उपलब्ध हैं, तो वेखी पढ़ना बेकार है।"

१९१० टॉल्स्टाय के जीवन का अन्तिम वर्ष था। और उस वर्ष भी वे विवेकानन्द के ग्रन्थों का अनुशीलन और प्रशंसा करते रहे। २९ मार्च को चेकोस्लोवाकिया के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और विचारक जान मशरिक जब टॉल्स्टाय से मिले तो उन्होंने पूछा कि क्या आप भारतीय दर्शन का अध्ययन कर रहे हैं। इस पर टॉल्स्टाय ने बताया कि आधुनिक भारत के श्रेष्ठतम दार्शनिक विवेकानन्द हैं।

टॉल्स्टाय की बड़ी इच्छा थी कि स्वामीजी के ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद और प्रकाशन हो। उन्होंने इस दिशा में थोड़ा बहुत कार्य किया भी था। उनके देहावसान के पश्चात् नस्जीविन तथा उनके अन्य अनुयाइयों ने "श्रीरामकृष्ण वचनामृत", मैक्समुलर की "श्रीरामकृष्ण और उनकी उक्तियाँ" तथा स्वामीजी के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद और प्रकाशन की व्यवस्था की।

●

श्रेष्ठ कार्य में अनेक विघ्न होते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

आरती

रामलषण शुक्ल
इलाहाबाद

दुनिया उतारे आरती स्वामी विवेकानन्द की !
निज धर्म संस्कृति का पराभव
देख दुःख पाते रहे
गुण गान भारत भूमि का
जो सर्वदा गाते रहे
जय हो अमर उस संत की
स्वामी विवेकानन्द की ॥ १ ॥

वेदान्त, दर्शन, उपनिषद का
मर्म समझाते रहे
पूजा, भजन, अर्चन, यजन का
पंथ अपनाते रहे
आजन्म फहराते रहे
कीरति पताका हिन्द की ॥ २ ॥

इंगलैंड, रूस, अमेरिका
सब विश्व देख चकित हुआ
हे धन्य मानव पर तुम्हारा
मन कभी न भ्रमित हुआ
प्रमुदित सभी होते तुम्हारी
निरख छवि मुखचंद की ॥ ३ ॥

पर्वत, नदी, झरने, विपिन
कण कण से तुमको प्यार था
तुम प्राण हिन्दू धर्म के
तृण तृण से स्नेह अपार था
सीमा न रहती, धूलि में
जब लोटते आनन्द की ॥ ४ ॥

कीरति तुम्हारी है अमल
गंगा की निर्मल धार सी
सदसद विवेकिनी बुद्धि भी
नैया की है पतवार सी
शतशत नमन स्वीकार लो
स्वामी ये माला छंद की ॥ ५ ॥

उत्तरकाशी से दण्डी ताल

—एक साधु
इलाहाबाद

उस समय हम चार संन्यासी उत्तरकाशी में तपस्या कर रहे थे। एक दिन स्वामी गि० जी ने मुझसे पूछा "क्या तुम्हें दण्डीताल देखने की इच्छा है?" हिमालय के घने जंगल में सुन्दर सरोवर तट पर दण्डी बाबा श्री गणेश जी ने तपस्या की थी। सुनते ही मैं बहुत आनन्दित हो गया। पूछ ताछ करने पर पता लगा कि उत्तर काशी से १४ कि. मी. आगे कलडियानी तक बस जाती है। उसके बाद १ कि. मी. आगे संगमचट्टटी है। संगमचट्टी से २२ कि. मी. पैदल जाना है। गि जी ने पता लगाया कि वहाँ वन विभाग का विश्राम गृह है। वहाँ रहने के लिए उत्तरकाशी के वन विभाग से अनुमति ले सकते हैं। परन्तु गि. जी. ने ऑफिस जाकर पूछताछ की तो पता लगा कि हाकिम शहर से वाहर गये हैं और सम्बन्धित किरानी छुट्टी में हैं।

हम दोनों ने जाकर वहां स्वामी अखण्डानन्द पुरी जी से वात की। उन्होंने बताया कि आप अघोरा जायँ जो रास्ते में संगमचट्टी के वाद मिलता है। वहाँ चौकीदार रहता है। उस गांव में पुराना चौकीदार मेरा परिचित है। मेरा नाम बताने पर वह मदद करेगा। उत्तरकाशी में साधुओं ने बताया कि वहां (दण्डीताल में) एक साधु कुटिया बना कर रहते हैं। आप वहाँ भी ठहर सकते हैं। वन विभाग के अतिथि भवन में रहने से आपको खाने-पीने एवं रहने के लिए कम से कम तीन चार सौ रूपये लगेंगे। गि.जी के पास पैसा नहीं था। मेरे पास पैसा था, लेकिन उतना खर्च करना कठिन था क्योंकि मुझे उत्तरकाशी से लौटते समय हेम कुण्ड देखकर किशनपुर, दिल्ली होकर जाना था। मैंने कहा हम दोनों आवश्यक खाद्य सामग्री लेकर जाएँगे। ३ दिन केवल खिचड़ी पका कर खायेंगे और भगवान का चिन्तन करेंगे। हम दोनों का खर्च मेरे पास जो पैसा है, उसी से हो जाएगा।

प्रात: उठकर भगवान का स्मरण, जप-ध्यान करने के बाद हम दोनों ने कुटिया में चाय पीकर विश्वानाथ और मां अन्नपूर्ण को प्रणाम किया। मैंने मां से प्रार्थना की कि मां तुम्हारी कृपा से हम दोनों की यात्रा, सुलभ, सुखकर और सफल हो। माँ कृपा कर आशीर्वाद दो।

हम दोनों के पास एक सेट कपड़ा, एक-एक ऊनी चादर प्लास्टिक शीट बरसात में जाने के लिए तथा एक दो किताबें आदि थीं। वजन ज्यादा होगा, इस भय से हमने कम्बल नहीं लिया। हम प्रात: सात बजे बस अडडे पहुँचे। कलडियानी की वस खड़ी थी। सामान वस में रख कर हम दोनों संन्यासियों ने वहाँ होटल में जलेबी, सिंगाडा खाया। ७-३० पर बस उत्तर काशी से रवाना होकर करीब ८-३० कलदिग्यानी पहुँची। बस में ही एक सज्जन ने बात करते समय बताया आपके आज मौजी पहुँच जाने से कल सबेरे १०-११ बजे तक आसानी से दण्डीताल पहुँच सकते है। वहाँ रहने की जगह भी मिलती है। एक होटल (चाय की दुकान को होटल कहते हैं) है वहाँ खाना खा सकते हैं।

कलडियानी में बस से उतर कर रास्ता पूछकर हम दोनों संगमचट्टी १०-१५ मिनट में पहुँचे।

संगमचट्टी में कुली मिलते हैं। ३५ किलो सामान ले जाने के लिए ५० रु० भाड़ा है। साधुओं ने एक छोटा पुल पारकर चढ़ना प्रारम्भ किया। जिस पहाड़ी रास्ते में जाना है वह एक पर्वत श्रेणी है उसकी दायीं दिशा में और एक पर्वत श्रेणी है जहाँ घने जंगल दिखायी पड़ते हैं दोनों के बीच में असी नदी बहती है। जैसे हम अघौरा की दिशा में बढ़ते हैं, पर्वत श्रेणी का ढाल बढ़ता जाता है। रास्ते की दायीं ओर असी नदी बहती है। रास्ते के नीचे खेती है और जंगल बिल्कुल नहीं है। अघोरा से कुछ खरीदने के लिए आने-जाने वाले लोगों से पता चला कि पहाड़ के पीछे जंगल है। हम दोनों १२-३० बजे अघोरा पहुँचे संगमचट्टी ४५०० फुट समुद्र तल से ऊँचा है और अघोरा ८००० फुट ऊँचा है। एक छोटे से मकान में देखा कि एक बूढा बैठा था। हम दोनों थोड़ा आराम करने के लिए वहाँ गये। एक बुढ़िया ने बहुत भक्ति से दो मृगछाला बिछाया और पूछा 'क्या चाय बना लूँ-दूध नहीं है।" हम दोनों ने अमृत तुल्य उस चाय को पिया। बुड्ढे ने बगल में बैठकर पूछा "क्या आप भोजन करेंगे" हम ने जवाब दिया 'नहीं, अघोरा जाकर भोजन करेंगे।' उन्होंने अंगुली दिखाकर बताया बगल में जो ग्राम है वही अघोरा है। ५ मिनट में हम दोनों वहाँ पहुँचे। वहाँ एक मंदिर में सामान रखकर हरि सिंह बुढ्ढे चौकीदार के बारे में पूछा। ५-१० मिनट में हरि सिंह आकर हमें अपने घर ले गया और बोला "महात्मा जी आप नहाइये। खिचड़ी तैयार हो जाएगी। चौकीदार के बारे में पूछने पर उसने बताया कि वह द ता गया है कल आपको रास्ते में मिल जायेगा। दण्डीताल के साधु के बारे में उन्होंने बताया कि अब वह महात्मा उस जगह को छोड़ कर चले गये हैं। घर में हरि सिंह के एक लड़के ने जो इण्टर तक पढ़ा था, बातचीत करते समय बताया कि ३ बजे यहाँ से रवाना हो जाने से आसानी से मौजी पहुँच सकते हैं। हरि सिंह ने अनुरोध किया कि साधु घर में आये हैं आज उसके घर रुकने से उसे आनन्द होगा। हमने जब बताया कि मौजी पहुँचने से कल सुबह जल्दी हम दण्डीताल पहुँच सकते हैं तब वह भी राजी हो गया। लेकिन जाते समय बोला यदि बारिश बहुत अधिक हुई तो आप रास्ते में झोंपड़ी में रुक जाइयेगा। आकाश में एक दो बादल थे। पूछने पर बताया गया कि यहाँ की बारिश का कोई ठिकाना नहीं है। कभी-कभी १० मिनट में समाप्त होगी कभी घन्टों तक बारिश होती रहती है।

हम दो साधु ३ बजे से थोड़ा पहले ही हरि सिंह के घर से रवाना हुए। अघोरा पार करने से पहले ही हल्की बारिश प्रारम्भ हो गई। आसमान में ज्यादा बादल नहीं थे। हमने सोचा सम्भवत: बारिश कुछ समय बाद बन्द हो जायगी। हम चलते रहे। करीब १ किमी से थोड़ा ज्यादा चलने के बाद एकाएक बारिश बहुत तेज हो गई और तेजी से हवा भी बहने लगी। अघोरा के बाद रास्ता घने जंगल में पहुँच जाता है। और रास्ते की चौड़ाई कहीं-कहीं बहुत कम, मात्र एक फुट थी। गाँव वालों ने हमसे पहले ही बताया कि आप पैदल रास्ते से सीधे जाइयेगा, ऊपर या नीचे मत जाइये। आप मौजी पहुँच जायेंगे। बारिश और हवा इतनी तेज हो गयी कि आगे जाना असम्भव हो गया था। रास्ते में एक बहुत बड़ा पत्थर था। हम दोनों ने उस पत्थर के नीचे आश्रय लिया। वहाँ खड़े होकर बारिश बन्द होने का इन्तेज़ार कर रहे थे। करीब एक या डेढ़ घण्टे बरसने के बाद बारिश कम होने लगी। उस समय एक शिकारी हाथ में बन्दूक लेकर आया। पूछने पर बताया कि वह मौजी से अघोरा जा रहा है वहाँ कुछ काम के लिए गया था। हमने उससे पूछा "क्या हम दोनों यहाँ से मौजी पहुँच सकते हैं?" उसने कहा आसानी से जा सकते हैं अभी ५-३० भी नहीं हुआ है। बरसात बन्द हो गई पर हल्की सी छोटें पड़ रही थीं। हम दोनों आगे बढ़े। आधे घंटे के बाद हरि सिंह की बतायी हुई झोंपड़ी दिखाई दी मैं एक

झोंपड़ी के सामने खड़ा होकर आराम करने लगा और गि जी जगह देखने गये। वहाँ केवल ४-५ झोंपड़ियाँ थीं। गि जी ने १० मिनट में आकर बताया, सुनो, झोंपड़ी देखा करीब २०×१२/१० फिट अन्दाज की है उसमें आधे से अधिक स्थान में गाय बँधी है, बची हुई जगह के बीच में आग जल रही है। आग जलाने का उद्देश्य कमरे को गरम रखना तथा हिंसक पशु से बचना है। एक ओर एक बुढ़िया, एक लड़की और दूसरी ओर एक बुडढा सोया करते हैं। बची हुई जगह में बैठने में भी असुविधा होगी क्योंकि पशुओं के मूत्रादि की दुर्गन्ध थी। वे लोग बोले आप दोनों चाहें तो रह सकते हैं। मौजी के बारे में ठीक से नहीं बता सकते केवल इतना ही बोले कि अभी बहुत समय है आप चाहें तो जाकर आसानी से पहुँच सकते हैं। संध्या के ५.५५ बजे थे। हम दोनों ने निश्चय किया कि श्री ठाकुर का नाम लेकर चले जाऐंगे और जल्दी से जल्दी जाकर मौजी पहुचेंगे। इस अंचल में सूर्यास्त ७-३० के बाद होगा और प्रकाश ८-०० बजे तक रहता है। तब समय करीब सांय ६ बजे था। हम दोनों आगे बढ़े। सुबह ९ बजे से हम दोनों लगातार पैदल चल रहे थे सामान का वजन भी था। कितनी भी कोशिश करने से हमारी गति अधिक नहीं हो पा रही थी। बिना विश्राम के हम जा रहे थे। अब जंगल भी घना होने लगा घने जंगल में हम आगे बढ़ने लगे। सात बज गया लेकिन मौजी कहाँ है ? उस रास्ते में जन बसती नहीं थी तथा कोई आने-जाने वाला भी नहीं था। अघोरा छोड़ने के बाद शिकारी को छोड़ कर रास्ते में और कोई भी नहीं मिला। हम दोनों आगे बढ़े, ७-३० बज गया और अन्धेरा फैलने लगा। हमलोगों के लिए आगे भी घना जंगल और पीछे भी घना जंगल, मौजी कहाँ ? और कितनी दूर है, भगवान ही जानता है। वापस जाने से भी घने जंगल में अंधेरे में होकर जाना पड़ेगा और आगे जाने से भी। अभी पैदल का रास्ता थोड़ा सा दिखाई पड़ता था। लेकिन कई-कई जगह में २ ४ फिट घास और झाड़ी थे उसे कठिनता से पार करना पड़ता। अब अंधेरा छा गया रास्ते में देखने में भी बहुत कष्ट होता था। हम दोनों साधु अब हिमालय के एक घोरअरण्य में फंस गए। अरण्य में तो सब जानवर हैं भालू, बाघ, चीता, सिंग। गि. जी से मैंने रूकने के लिए कहा। झोले से टार्च निकाला और कहा चलिए महाराज अब श्री ठाकुर ही एक मात्र आश्रय हैं। भूख लग रही थी गि.जी बोले बिस्कुट निकालो। ५-१० मिनट वहाँ ही एक पत्थर पर हम दोनों ने आराम किया है, और बिस्कुट खाया।

हम दोनों आगे बढ़ने लगे—केवल अंधेरा घना हिमालय जंगल था। दिन के समय भी वह भयंकर लगता है। रास्ते की दायीं ओर ४०० से १००० फिट गहरी ढलान और घने जंगल तथा बायीं ओर भी ऊपर ४०० फिट ऊँचे घने जंगल, देवदारु के वृक्ष। गि.जी बोले, सुनिये, स्वामी अखण्डानन्द जी स्मृति कथा में कहते हैं कि हिमालय में सत्य युग का पेड़ है। जाते समय दायीं ओर थोड़ा सा भी फिसल जाने से ४००-१००० फिट नीचे गिर जायेंगे। हमने रामकृष्ण शरणम् गाना शुरू किया, लेकिन थकावट और तेजी से श्वासोच्छ्वास के कारण जाना नहीं हो पाया। अब हम हरिः ॐ करके चिल्लाने लगे। एक बार मेरी और एक बार गि.जी की हरिः ॐ की जोर की आवाज उस घोरारण्य में प्रतिध्वनित होने लगी। हम दोनों का उद्देश्य था कि एक तो भगवान का नाम स्मरण होगा और आवाज़ के कारण कोई जानवर पीछे नहीं आएगा।। हम बीच-बीच में टार्च पीछे जला कर देखते थे कि कोई (जंगली जानवर) जंगल का भाई पीछे तो नहीं आ रहा है। रास्ते की बगल में एक बड़ा पत्थर देखकर मैंने गि.जी से कहा "क्या आपको याद है पूज्यपाद हरिमहाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) के जीवन की एक घटना। उन्होंने

इसी आँचल (गंगोत्री या केदार) में पूजनीय सारदा महाराज के साथ भ्रमण करते समय सन्ध्या के समय रास्ता भूल गये थे। दोनो गुरु भाइयों ने निश्चय किया कि अलग-अलग रास्ता पकड़ कर किसी गांव पहुँचेंगे। कम से कम एक बच सकेगा (वह आंचल हिंसक पशुओं से भरा घना जंगल था। तुरीयानन्द जी कुछ देर बाद एक गांव पहुँच गये। और सुबह होने से भी जब सारदामहाराज को न देखा तो कुछ ग्राम वासियों के साथ उनको खोजने के लिए जंगल गये। जंगल में जाकर देखा, कि सारदानन्द जी एक बड़े पत्थर पर ध्यानरत थे। पूज्यनीय हरि महाराज ने पूछा क्यों भाई यहाँ क्यों बैठ गये ? तो सारदानन्द जी ने जवाब दिया कि भाई मैंने सोचा कि जब मृत्यु सामने है तो मरते समय भगवान का स्मरण करते हुए मरूँगा। ऐसा सोच कर बैठ गया।

हम दोनों इसी पत्थर पर बैठकर जितना संभव हो श्री ठाकुर जी का स्मरण करें। गिजी ने उत्तर दिया-चलो उनका ही नाम लेते हम मौजी पहुँच जाएँगे।

हरिः ॐ चिल्लाते हमदोनों चल पड़े। अंधेरा, वजन लेकर चलना थकावट, इन सब के कारण हम दोनों की चाल कम हो गयी, मेरी तो और भी कम। लगातार उपयोग करने के कारण टार्च का प्रकाश कम होने लगा! नौ बज गया था। कृपा सिन्धु भगवान की लीला देखिये! जैसे ही मेरे टार्च का प्रकाश कम होने लगा, चंद्रोदय होने लगा। वृक्षों के बीच से चन्द्र किरणों के प्रकाश में हम दोनों चलने लगे। जहाँ चन्द्रमा का प्रकाश कम होता या जंगल में घनापन होने के कारण अंधेरा होता वहाँ टार्च दिखा कर और बीच-बीच में टार्च घुमा-घुमा कर देखते चल रहे थे। हमें बहुत भूख लग रही थी। अब समय १० बज गया। हम दोनों ने भयंकर आवाज सुनी। उस घोरारण्य में निःशब्दता में थोड़ी सी आवाज प्रतिध्वनित होती है और किसी के भी मन को चूर-चूर कर डालती है। थोड़ा सा ध्यान देकर सुनने से ज्ञात हुआ कि वह आवाज पानी के ऊपर से नीचे गिरने की है। रास्ते में कहीं झड़ने से पानी ऊपर से गिर रहा है। कुछ पलों में रास्ता हमें वहीं ले गया। एक छोटी सी नदी ठीक रास्ते में ही करीब ८०-१०० फीट ऊपर से तेजी से गिर रही है। वहाँ रास्ता चौड़ा (३-४) फीट था और पत्थरों से भरा हुआ था वहीं पानी मिला। थकावट और भूख के कारण और आगे जाने की शक्ति ही नहीं थी। हम दोनों वहीं बगल में जहाँ चन्द्रमा का प्रकाश अच्छी तरह पड़ रहा था, बैठे और ब्रेड निकाला, खाया और पानी सावधानी से लेकर पिया। अब थोड़ा शक्ति-संचार हुआ। १०-१५ मिनट के बाद उठकर चलने लगे। अबतक हम दोनों साधु हिंसक पशुओं से भरे हुए उस जंगल में २ घन्टे से अधिक देर से अंधेरे में आ रहे थे। श्री भगवान की अशेष कृपा से हमें किसी तरह का भी -- प्राणी का हो या जानवर का— भय नहीं हुआ, लेकिन शंका हो रही थी कि हम रास्ता खो गये हैं।

हरिः ॐ चिल्लाते हम आगे बढ़े। ५-१० मिनट के बाद कुत्ता भौंकने की आवाज सुनाई दी। कुत्ता भौं-भौं कर रहा था। गि.जी बोले शायद मौजी आ गया है। ४०-४५ मिनट के बाद हमने एक झोंपड़ी को देखा। कुत्ता को बाँध कर रखा गया है। हरिः ॐ आवाज सुनकर कुत्ता जोर से भौंकने लगा लेकिन कोई भी आदमी बाहर नहीं आया। आगे बढ़ कर हमने देखा एक ओर झोंपड़ी थी जिसके अन्दर आग जल रही थी। हमने सामने जाकर ४-५ बार जोर से हरिः ॐ का उच्चारण किया। बाद में बोला हम दो साधु आये हैं। रहने के लिए जगह चाहिए। अंदर से एक महिला की आवाज आयी यहाँ जगह नहीं है। अनुरोध करने के बाद एक आदमी बाहर आया वह गुज्जर जाति का मुसलमान था पुराने जमाने में डकैती करते थे अब पशुपालन करते हैं और दूध बेचते हैं) वे सब बन्जारा हैं। टार्च लगाकर देखा सुबह

वह आदमी ३ कि मी. से हमारे साथ ही बस में आया था। उन्होंने थोड़ा आगे एक Tent जिसे गोदाम कहते हैं, दिखा कर कहा, आप वहाँ रात में सो सकते हैं। हम दोनों ने वहाँ जाकर देखा एक सफेद Tent तीनों ओर से खुला है। एक कोने में आग जल रही थी और एक कोने में बहुत बोरे थे जिनमें कुछ चीजें रखी थीं। बाद में दूसरे दिन मालूम हुआ कि वह जंगल से धूप वगैरह इकट्ठा करके संगम चट्टी द्वारा दिल्ली भेजता है। वहाँ हमने देखा दो आदमी सो रहे हैं। हमने हरिः ॐ बहुत चिल्लाया। वे नहीं उठे, गहरी नींद में थे। मैंने गि.जी से कहा छोड़ दीजिए इस ओर खाली जगह में हम लेट कर आराम करेंगे। गि. जी ने देखा कुछ खाली बोरे पड़े थे। उसी को जमीन में बिछाना आरम्भ किया। इसी समय एक आदमी (प्रसाद १८-१९ वर्ष का युवक) एकाएक नींद से जागकर उठ बैठा और पूछा 'आप कौन हैं?" हमने जवाब दिया देखो बाबा हम दो साधू हैं। अघोरा से आते देर हो गयी, रात यहाँ विश्राम करके प्रातः दण्डीताल जायेंगे। उसने कहा ठीक है महाराज आप इस रात में जंगल में कैसे आए। सो जाइये। प्रसाद ने एक गद्दा दिया और कहा हम दो एक ही रजाई में निर्वाह करेंगे। आप एक रजाई ले लेना। आराम से सो जाना। एक रजाई दे दी गि.जी ने गददी के ऊपर एक गेरुआ चादर बिछाया और रजाई लेकर सो गये। मैंने स्वेटर पहनकर गरम चद्दर से ही ठण्ड को मिटाने का प्रयास किया। समय रात ११.३० था।

प्रातः ६.३०—७.०० हम दोनों उठे। उस लड़के का नाम प्रसाद था। चाय बनवायी, मुंह धोने के लिए पानी गरम किया। प्रसाद मेरी घड़ी लेना चाहता। उसके पास घड़ी नहीं थी। वह कम दाम की इलेक्ट्रोनिक घड़ी थी। मैंने २१ रु० में दे दी। यदि वह पैसा न भी देता तो भी मैं उसे घड़ी दे देता। हम दोनों साधुओं ने करीब ८:३० बजे दण्डीताल के लिए प्रस्थान किया। करीब एक घंटा जाने के बाद रास्ते में एक झरना मिला। हमने देखा कि एक आदमी झरना पार करके आया। पूछने पर उसने बताया कि वही चौकीदार (दण्डीताल का) है। हमने अपना पूर्ण परिचय दिया और बताया कि उत्तरकाशी में कोई भी आफिसर नहीं है वन-कार्यालय में लोगों ने बताया कि आप से मिलने पर कमरे की व्यवस्था हो जायेगी। चौकीदार का नाम राम था। देखने में वह पैसे का लालची लग रहा था। उसने कमरे खोलने में बहुत आनाकानी की तथा मुझे बताया कि बिना आदेशपत्र के वह कमरा खोलने में असमर्थ है। और बताया कि यदि चाहें तो वह अपना कमरा हमें दे सकता है। खाना बनाने के लिए बर्तन मांगने पर उसने कहा कि बर्तन देने के लिए बहुत दूर जाना पड़ेगा तथा सुबह से कुछ नाश्ता भी नहीं किया है। इसलिए वह बर्तन देने का इच्छुक नहीं है। बहुत अनुरोध करने के बाद उसने कहा कि यदि आप मौजी जायंगे तो बर्तन की व्यवस्था कर देगा। हमने मन में श्री ठाकुर जी से प्रार्थना की कि उनको हमारी सहायता करने की सदबुद्धि प्रदान करें। हमने गि.जी से बताया कि आप सब सामान रखकर यहीं ठहरिए, मैं इनके साथ मौजी जाकर बर्तन ले आऊँगा। इतने में हल्की सी बूँदा बांदी हुई राम ने पूछा कि आपके पास छाता नही है? मैंने कहा मैं छाता लाया नहीं प्लास्टिक शीट जो लाया था रात्रि में जंगल में कहीं गिर गया। एकाएक उसके मन में परिवर्तन हुआ और बोला चलिये आपके साथ मैं दण्डीताल चलूंगा। जल्दी करिए हम तीनों दण्डी ताल की ओर चल पड़े। थोड़ी देर बाद उसने हम दोनों का Bag भी ले लिया। इससे हमें चलने में सुविधा हुई। लगभग एक घण्टे पश्चात् हम दण्डीताल पहुँचे। वहाँ उसने अपना कमरा हम लोगों के लिए खोल दिया। गि. जी के साथ बात करने पर ३० रुपये में ३ दिन के लिए कमरा देने के लिए राजी हुआ। उसने केवल एक

ही वर्तन दिया। उसने थोड़ी सूखी लकड़ीकी व्यवस्था कर दी। हमने चाय बनायी और पाँवरोटी के साथ नास्ता किया और राम को भी खिलाया। इतने में पानी बरसने लगा। हमने खिचड़ी पकाने के लिए रखा और राम से कहा कि तुम खिचड़ी खाकर जाओ। १० मिनट के बाद पानी बन्द हो गया और राम चला गया। हम दोनों ने हाथ मुंह धोकर थोड़ा ध्यानादि के बाद भोजन करके विश्राम किया। वहाँ बगल में साधू-कुटिया नष्ट हो गयी थीं। वहाँ एक सॉस पैन और दो प्लेट और कुछ कागज वगैरह पड़े थे। हम दोनों साधु कुछ विश्राम करने के बाद जंगल में टहल कर आये। बहुत प्रयास करने के बाद भी हम लोग आग जलाने में असमर्थ हुए। कागज की सहायता से थोड़ा पानी गरम कर पाये। उसी से काफी बना कर हमने पी। रात में और खाने की व्यवस्था नहीं हो पामी। कमरे के नीचे एक ताल के तट पर बहुत छोटा सा मन्दिर था। उसके सामने हम लोग बैठे। मन्दिर में छोटी-छोटी अन्नपूर्णा, शिवजी और गणेश जी की मूर्ति थी। सूर्यास्त तक हम लोग वहाँ बैठे थे।

दण्डी ताल एक त्रिकोणाकार का एक बड़ा सरोवर है। सरोवर देखने से ब्रह्म योनि की याद आती है। सरोवर तीनों ओर से घने जंगल से घिरा हुआ है। उत्तर दिशा से एक छोटी सी झील आकर सरोवर से मिलती है। और पूर्व दिशा से एक छोटी झील आकर सरोवर में समाहित होती है। सरोवर की दक्षिण पूर्व दिशा में थोड़ा ढाल है जहाँ से असी नदी का उद्गम होता है। सरोवर के पूर्व तट पर पैदल रास्ता है जहाँ से बन्दर पूंछ बर्फ की चट्टान पार करके यमुनोत्री जा सकते हैं। सरोवर अत्यन्त रमणीय है। सरोवर का पानी अत्यन्त निर्मल और शीतल है वहाँ का वातावरण अत्यन्त गम्भीर और प्रशान्त है।

यह स्थान साधना भजन के लिए अति उत्तम है।

ठंड के कारण रात में अच्छी नींद नहीं आयी। एक-दो घण्टे बाद नींद खुल गयी। लेट कर ही भगवान का स्मरण कर रहा था। बहुत देर के बाद समय देखा पौने २ बजा था। गि जी की भी अवस्था वही थी। टार्च का प्रकाश देखकर वे बोले सम्भवतः कल भी आग नहीं जला सके तो भूखा रहना पड़ेगा। एक दिन उपवास करके हम लोग यहाँ से चले जाएँगे। मैंने कहा आप चिन्ता मत कीजिए माँ सब व्यवस्था कर देगी। भगवान का स्मरण करते-करते ५ बजे के बाद नींद आ गई। हम लोगों ने ७ बजे उठ कर जंगल में टहल कर सूखी हुई लकड़ी की तलाश की। लेकिन लकड़ी नहीं मिली। हम लोग वापस आये। हम लोग साधु द्वारा छोड़ी हुई कुटिया के सामने आये। वहाँ एक लकड़ी की पेटी पड़ी थी। हमने गि.जी से पूछा यदि आप सहमत हैं तो इस पेटी को तोड़ कर हम अग्नि जला सकते हैं। हमने पेटी को तोड़ा। उसकी सहायता से पकाने की व्यवस्था हो गयी। हम दोनों साधु आनन्द से भगवान का स्मरण-मनन, वेद पाठ, शिव महिमना स्नोत्र, सहस्र नाम परायण आदि करते तीन रात और दिन वहीं व्यतीत किया। जाने के पूर्व हम ने निश्चय किया था कि बात बहुत कम करेंगे। तीसरी रात हमने धूनी जलाकर रात १२ बजे तक ध्यान-भजन किया। चौथे दिन प्रातः लगभग ४ बजे उठकर शौचादि के बाद ध्यान भजन करके चाय पीकर, तथा रात की अवशेष बहुत थोड़ी खिचड़ी खायी और शिव मन्दिर के सामने सरोवर तट पर बैठकर (आखिरी) अन्तिम बार शिव महिम्न स्तोत्र पाठ किया और वहाँ से उत्तर काशी के लिए प्रस्थान किया। समय लगभग७.२० था। करीब नौ बजे मौजी पहुँचा। वहाँ पर गोदाम में बैठकर आराम किया। उस रात में मौजी में जो प्रसाद नामक लड़का मिला था जिसने आते समय आश्रय दिया था उससे बातचीत की। बातचीत में मालूम हुआ कि दण्डीताल में मौजी

५—६ किमी० दूर है। मौजी से अघोरा ११ कि मी. दूर है और अघोरा से संगमचट्टी ६ किमी० दूर है। (संगमचट्टी से दण्डीताल की दूरी २२-२३ किमी० है)। हमलोग करीब सवा दस बजे अघोरा चल पड़े। अब हमने स्वयं आँखों से सूर्य प्रकाश में जिस जंगल को रात में पार किया था, देखा। मैने गि.जी से कहा कि अब भगवान शंकराचार्य के कठोपनिषद् भाष्य की याद आ रही है। वहाँ एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि मानो ईश्वर हाथ में लाठी पकड़ कर खड़े हैं और उनके भय से सूर्य चन्द्रादि सब उनका सब काम कर रहे हैं। ऐसा ही सम्भवतः उस रात में कृपा सिन्धु श्री ठाकुर हाथ में लाठी पकड़ कर हमारे पीछे आ रहे थे। उनके भय से जंगल का कोई भाई आया नहीं। हम लोग जीवित मौजी पहुँच सके। अन्यथा हमारी मृत्यु अवश्यम्भावी थी। हमने एक घर में चाय पिलाने के लिए अनुरोध किया। एक बूढ़ा आदमी ने अपने घर के अन्दर ले जाकर बैठाया। उनकी बहू या बेटी ने बहुत भक्ति से १० मिनट में चाय बनाकर पिलायी। बात करते समय जब हमसे बोले कि यहाँ से दण्डीताल जाते समय मौजी की दूरी किसी ने भी ठीक से नहीं बतायी, उन्होंने उत्तर दिया महाराज लोग जैसे खुद जाते हैं वैसे ही बता देते हैं। ३ बजे वहाँ से (अघोरा) निकल कर जल्दी-जल्दी जाने के लिए कोशिश की। ४.३० बजे बस पकड़नी थी। गि जी के पैर में जूता काटने के घाव के कारण चलने में असुविधा हो रही थी। रास्ते में ही संगमचट्टी से आने वाले लोगों ने करीब ४ बजे बताया कि बस उत्तरकाशी चली गयी।

करीब ५ बजे हम संगमचट्टी पहुँचे। उत्तर काशी जाने के लिए बस तो नहीं थी। एक चाय की दुकान में बैठकर हमलोगों ने चाय-नाश्ता किया। पूछने पर लोगों ने बताया कि उत्तर-काशी जाने के लिए कोई भी साधन नहीं मिलेगा। वहाँ पर हमने एक आश्रम का बोर्ड देखा। लोगों ने उसके बारे में बताया कि आश्रम २ कि०मी० दूर है तथा जो साधु उसमें रहते हैं कहीं बाहर गये हैं। यदि उत्तरकाशी जाना है तो १० कि०मी० दूर गंगेरी जाने पर वहाँ से साधन मिल सकता है। हम दोनों साधु आपस में परस्पर क्या करना उचित है, इस विषय पर विचार कर रहे थे। सहसा एक जीप उत्तरकाशी से आयी, कुछ माल लेकर आयी थी। पूछने पर चालक ने बताया कि १०-१५ मिनट में उत्तरकाशी वापस जायेगा, लेकिन किराया बस से दुगना पड़ेगा। ५.३० बजे जीप वहाँ से उत्तरकाशी रवाना हो गयी। अभी ६ बजा नहीं कि जीप कैलाश आश्रम के समीप आयी। मैंने गि जी को बताया आप सीधा जाइये, मैं यहां उतर कर भिक्षा लेकर आता हूँ। कैलाश आश्रम में सायं ६ बजे साधुओं की भिक्षा की व्यवस्था है। सामान्यतः दाल रोटी देते हैं।

मैं कैलाश आश्रम के सामने उतर कर जैसे ही आश्रम की सीढ़ी चढ़ रहा था, भिक्षा की घंटी बजी। उस दिन मां ने विशेष भोजन की व्यवस्था की थी। (किसी भक्त ने सेवा दी थी।) भिक्षा में पूड़ी, हलवा, सब्जी, दाल और चावल दिया गया। दोनों के लिए भिक्षा लेकर धीरे धीरे डेढ़ कि०मी० दूर कुटिया में मैं पहुँचा। समय करीब सायं साढ़े छः बजा था।

आशा

—स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

विद्यालयों की परीक्षाएं लगभग समाप्त हो चुकीं। गर्मी की छुट्टियों में बच्चे कुछ राहत की साँस लेने लगे होंगे। कुछ दिनों में परीक्षाफल प्राप्त होंगे और तुरन्त हमेशा की तरह माता-पिता एक बड़ी भारी भूल दोहरायेंगे। बल्कि यों कहिये कि प्रतिवर्ष की परीक्षा और परीक्षाफल की विधि ने बच्चों को एक दुष्टचक्र में ढँकेल दिया है।

वर्ष भर की हुई पढ़ाई का सारा मूल्याङ्कन दो तीन घण्टों में लिखे एक पर्चे के आधार पर किया जाता है। इसका एक दुष्परिणाम तो यह कि सालभर पढ़े या न पढ़े, परीक्षा में उत्तीर्ण होने का हर सम्भव उपाय आजमाने में ही बच्चों की सारी बुद्धि लग जाती है। उससे भी बड़ा दुष्परिणाम यह कि परीक्षाफल को प्रगति का मापदण्ड बनाकर हम बच्चों को फल की आशा के साथ बाँध देते हैं। फल की न्यूनाधिकता से कार्यक्षमता और परिश्रम का मूल्यांकन होने लगता है। किसी भी कारण से बच्चे के अङ्कों का प्रतिशत थोड़ा कम रहा कि घर-घर में प्रवचन शुरू हो जाते हैं—'हम रातदिन मेहनत कर पैसा कमाते हैं, तुम्हें खिलाते-पिलाते हैं, तुम्हारी हर जरूरत पूरी करते हैं और एक तुम हो कि अच्छे अङ्कों से पास नहीं हो सकते !' थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ यही उद्‌गार देश भर के न जाने कितने माता-पिता इन गर्मियों में न जाने कितनी बार निकालेंगे।

बच्चे पढ़ें, पढ़ते हैं इसका पता चले, इस दृष्टि से परीक्षा और परीक्षाफल जैसे पैमाने उनकी प्रगति आँकने के लिए हों यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु कभी यह भी विचार किया है कि हम उन्हें इस बहाने बचपन से ही फल की आशा के साथ बाँध दे रहे है। ऐसा नहीं लगता कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की अमूल्य शिक्षा की विपरीत दिशा में उन्हें हम ले जा रहे हैं ? विद्या के बारे में शास्त्रों का उद्‌घोष हैं—'सा विद्या या विमुक्तये'—जो मुक्ति दिलावे वही विद्या है। और आज विद्यार्जन के नाम पर मुक्ति तो दूर रही, आशा के पाश में बच्चों का बचपन ही बाँध दिया जाता है। पढ़ाये गये विषयों का बच्चों को कितना बोध हुआ, इस पर तो ना के बराबर ही कोई ध्यान देता है।

परीक्षाफल प्राप्त होने के बाद जिसे अच्छे अङ्क मिले होंगे, उसे पुरस्कारों का लालच दिखाकर फिर अगले वर्ष के लिये फल के पीछे दौड़ने पर बाध्य किया जाता है। जिसे कुछ कम अच्छे अङ्क मिले हों, उसे प्रारम्भ में कहे के अनुसार सुनना पड़ता है और कहीं न कहीं उसके अचेतन मस्तिष्क में एक अपराध बोध पैदा किया जाता है। चाहे मेहनत करने पर भी कोई अनुत्तीर्ण हुआ हो उसके लिए तो सिर उठाकर चलना मानो पाप होता है। उसके जीवन में अन्य चाहे जितनी विद्याओं में उसने प्रगति की हो परन्तु खराब परीक्षाफल उसके सारे किये-कराये पर पानी फेर देता है।

समाज की व्यवस्था को तो आसानी से बदला नहीं जा सकता। परन्तु अपने बच्चों के परीक्षाफल को हम कितना महत्त्व दें और उस बहाने उनके खिलते हुए बचपन को हम आशा के पाश में कितना जकड़ कर रखें, इस विषय में हम विचार तो कर ही सकते हैं। अपने दृष्टिकोण में थोड़ा परिवर्तन तो ला ही सकते हैं।

स्वामी अद्‌भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

१५. संन्यास और तपस्या

कलकत्ता आकर लाटू महाराज पहले तो भक्तपालक रामचन्द्र दत्त के घर गये और वहाँ दो-चार दिन रहकर वराहनगर मठ में आ गये। कलकत्ते में रामबाबू के घर रहते समय एक दिन वे नरेन्द्रनाथ के घर गये थे। वहाँ पर उन्होंने नरेन्द्रनाथ की माताजी से कहा—"देखिए माँ, लोरेनभाई का मन मैदे की लोई के समान है। उसे जिस भाव में गढ़िए उसी भाव का हो जाता है। भीतर में महाशक्ति है। जब जिस ओर भी वह मन लगाता है, उसी ओर नवीनता दिखाता है।" (श्री महेन्द्रनाथ दत्त कथित)।

उसी काल में एक दिन नरेन्द्रनाथ ने उनको कहा—"अरे, हम सबने विरजाहोम करके संन्यास लिया है, तू भी ले ले।" नरेन्द्रनाथ के कहने पर लाटू महाराज विरजाहोम करके यथारीति संन्यास लेने को सहमत हुए। विरजाहोम के पूर्व लाटू महाराज जब पिण्डदान करने को बैठे तो उन्होंने एक विचित्र कार्य किया। हमारे देशाचार की दृष्टि से वह अद्‌भुत सा प्रतीत होने पर भी छपरा जिले के किसी किसी सम्प्रदाय में उस तरह का पिण्डदान अब भी प्रचलित है। किसी विशेष मन्त्र का उच्चारण न कर लाटू महाराज अपने पितृगण का इस प्रकार आवाहन करने लगे—"ऐ मेरे बापजी! यहाँ पर (आसन दिखाकर) बैठो। यह पूजा लो, यह पिण्ड लो, यह पानी लो।" इस प्रकार सहज सरल और अनाडम्बर भाव से अपने पितृपुरुषों का आह्वान कर उन्हें पिण्ड आदि प्रदान करके वे विरजाहोम करने को बैठे। "सदा-सर्वदा लाटू का अद्‌भुत् चरित्र, अद्‌भुत् भाव, ध्यान-धारणा में अद्‌भुत् अनुराग तथा अन्य अद्‌भुत् आचरणों का स्मरण करके ही स्वामीजी ने उसे अद्‌भुतानन्द नाम दिया।' ('सत्कथा' नामक बंगला पुस्तक की स्वामी सारदानन्द लिखित भूमिका से उद्‌धृत।)

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् लाटू महाराज डेढ़ वर्ष तक लगातार वराह नगर मठ में रहे। उन दिनों वे अपने अन्य गुरुभाइयों के साथ कठोर साधना में डूबे रहे। आगे एक अध्याय में लाटू महाराज के साधना-विषयक प्रसंगों का वर्णन किया जाएगा। उसके पहले हम वराहनगर मठ के बारे में कुछ कहना चाहेंगे।

वराह नगर मठ-भवन जब भाड़े पर लिया गया उस समय लाटू महाराज वृन्दावन में थे। तथापि प्रत्येक पुस्तक में इस तरह का वर्णन मिलता है—"श्रीठाकुर के देहत्याग के पश्चात् इस द्वन्द्व में पड़े हुए थे कि क्या कुछ दिनों के लिए लौटकर पढ़ाई आदि समाप्त कर लें अथवा अभी संसार का त्याग करके साधना-भजन में लगे रहकर गुरुप्रदर्शित पथ पर चलें। श्रीयुत् लाटू, तारक और बूढ़े गोपाल का पहले से ही अपने घर से सारा संबंध विच्छिन्न हो चुका था और उनके कहीं सिर रखने

को जगह न होने के कारण, उनके निवास हेतु वराहनगर में एक मकान भाड़े पर लिया गया। यहीं से वराह नगर मठ का सूत्रपात हुआ।"

एक दिन बलराम-मन्दिर में एक भक्त ने वराह नगर मठ की उत्पत्ति की बात उनसे पूछी थी। इसके उत्तर में उन्होंने कहा – "मुझे वह सब नहीं मालूम ! विवेकानन्द-भाई के मुख से सुना है मठ-वठ जो कुछ देख रहे हो, वह सब सुरेश मित्र के कारण हुआ है। एक दिन सुरेन्द्र बाबू ने लोरेन भाई से एक अड्डा बनाने को कहा जहाँ कि आपस में मिलाजुला जा सके। इस पर लोरेन भाई ने दुःख व्यक्त करते हुए कहा था, 'अड्डा बनाकर क्या होगा ? हमारे बीच ऐसे लोग भी तो हैं जिन्हें लौट जाने को कोई स्थान नहीं है। उनके रहने की कोई व्यवस्था कर सकते हो तो करो। आवश्यकता होने पर हम लोग भी वहाँ जा कर रहेंगे या साधन-भजन कर सकेंगे।' लोरेनभाई की बात सुनकर सुरेन्दर बाबू ने पूछा था, 'एक ऐसा आश्रम बनाने में कितना खर्च लगेगा !' इस पर लोरेनभाई ने कहा, 'काशीपुर-उद्यान के लिए जो देते थे, उतना ही यदि दे सको तो एक आश्रम हो सकता है।' ये सब बातें सुनकर सुरेन्दर बाबू प्रतिमाह कुछ रुपये देने को राजी हुए। भवनाथ-भाई को इस बात की खबर दी जाने पर उन्होंने मुन्शी लोगों का भुतहा मकान दस रुपये किराये पर ठीक कर दिया। और सुना है कि (हुटको) गोपाल और भवनाथ-भाई, इन दोनों ने मिलकर मकान की साफ-सफाई की, फिर लोरेन भाई को बुला लाये और इस प्रकार दो-चार महीने के भीतर मठ बना दिया।"

बलराम मन्दिर में एक दिन लाटू महाराज ने एक भक्त को खेदपूर्वक कहा था – "देखो, चोरी करते-करते आदमी का ऐसा स्वभाव हो जाता है कि यह भला-बुरा नहीं समझ पाता। चोर का मन ऐसा भावहीन हो जाता है कि उसे देवता का गहना लेने में भी जरा सी भी द्विधा या भय नहीं रहता। वृन्दावन में एक दिन पत्र आया कि बलराम बाबू के घर से उनके (ठाकुर द्वारा उपयोग में लाये गये) कपड़े-लत्ते, शाल दुशाले सब चोर उठा ले गया है। तब माताजी ने योगीन स्वामी से लिखवा कर एक पत्र भेजा - चोर जो कुछ ले गया है वह तो अब मिलने का नहीं। जो कुछ अब भी बच रहा है उसे थोड़ा देखिएगा।' सुना है कि माताजी की वह चिट्ठी पाने के बाद बलराम बाबू ने उनकी (ठाकुर की) चीजें मठ में भिजवा दी थीं।"

लाटू महाराज के मुख से हमने सुना है – "मठ जमाने के लिए हुटको गोपाल बड़ा परिश्रम किया करता था। वह प्रायः ही कलकत्ता जाकर भक्तों से मुलाकात करता। उसी ने लोरेनभाई को (साथ) लेकर अड्डा जमाया। लोरेनभाई उन लोगों से कहता, 'तुम लोगों से वे जो इतना स्नेह करते थे, वह क्या संसार करने के लिए था ?' इसी प्रकार लोरेनभाई के आकर्षण से एक एक कर सभी मठ में आकर रहने लगे। लोरेनभाई के मठ में न रहने पर मठ नहीं जमता।"

और भी कुछ प्रसंग यहीं पर देना उचित होगा। "वराहनगर मठ में हम लोगों के बीच अच्छी बातचीत चल रही थी। उसी समय सुरेश बाबू आ पहुँचे। तुरन्त ही स्वामीजी बातचीत बन्द करके छत पर चले गये। सुरेश बाबू कहते, 'तुम लोग मुझे देखकर इतना संकोच क्यों करते हो ? वे (ठाकुर) दया करके दिलवा रहे हैं तो कुछ दे रहा हूँ, नहीं तो मुझमें कुछ देने की सामर्थ्य कहाँ है ?' देखो, सुरेशबाबू का कैसा भाव था—वे दिलवा रहे हैं इसीलिए दे रहा हूँ ! ऐसा प्रायः देखने में नहीं आता। एक दूसरे दिन स्वामीजी ने उन्हें (सुरेश मित्र को) आते देखकर हम लोगों से कहा, 'जाओ, सब छत पर चले जाओ; अब कौन उसके साथ बैठकर गप करे।' उसके

कहने पर सभी छत पर चले गये। सुरेन्दर बाबू ने आकर देखा तो वहाँ कोई भी नहीं था। तब वे रोते हुए कहने लगे, 'दो पल तुम लोगों के पास शान्ति पाने को आता हूँ, पर तुम लोग भी यदि ऐसा करो, तो कहाँ जाऊँगा ? देखा न उनका हृदय ! वही तो मठ का खर्च चलाते थे, अतः जोर करने पर भी उन्हें शोभा देता। परन्तु थोड़ा भी जोर नहीं दिया, केवल मुलाकात न करने पर अभिमान भर व्यक्त किया। शुरू शुरू में लोरेन भाई मठ में नहीं रहता था। शरद्‌भाई, शशी भाई, निरंजन भाई और बाबूरामभाई तब घर से ही मठ में आनाजाना करते थे। सुना है कि आँट-पुर से आकर संन्यास लेने के बाद (सम्भवतः मार्च में) वे सभी वहीं रह गये। सुना है कि लोरेन-भाई के घर में तब बड़ा गड़बड़ चल रहा था, इसीलिए उन दिनों वह आ नहीं पाता था। सारा गड़बड़ (मुकदमा) मिट जाने पर लोरेनभाई (१८८७ ई० के मई में) जब (वराहनगर मठ) आया तो बहुतों (गृह-भक्तों में से) ने कहा, 'नरेन के कारण ही ये छोकरे घर से चले आये हैं, यही इस दल का नेता है।' किसी के बाप और भाई आकर लोरेनभाई को गालियाँ देने लगे। लोरेनभाई ने कहा, 'मुझको क्यों कोसते हैं ? आप अपने लड़के को ले जाइये। मैंने क्या उसे रोक रखा है ?' उन्होंने (ठाकुर ने) जैसे सारदाभाई के पिता को कहा था, लोरेनभाई ने भी उन लोगों से वैसा ही कह दिया। राखालभाई को मैंने अपने पिता से कहते सुना, 'आप अब मत आइएगा, मैं यहाँ मजे में हूँ।' घर से कोई आया है यह सुनते ही शशी-भाई मठ से निकल पड़ता, किसी के साथ भेंट नहीं करता। सारदाभाई का भी वही हाल था, नाराज होकर वह मठ से जाकर रमता साधु हो गया था।

योगीनभाई के आ जाने पर मठ जीवन्त हो उठा। उस समय बलराम बाबू भी मठ की सहायता करने लगे। मास्टर महाशय भी बीच बीच में कुछ सहायता देते थे। मठ में हम सबको मधुकरी करना पड़ता था।"

लाटू महाराज के मुख से हमें वराहनगर के मठ-भवन का कोई विवरण सुनने को नहीं मिला, परन्तु श्रीयुत महेन्द्रनाथ दत्त ने उस काल के वराहनगर मठ का एक बड़ा ही स्पष्ट चित्र लिपिबद्ध किया है, जिसे हम उन्हीं की भाषा में आपके सम्मुख उपस्थित करते हैं—"मठ का भवन अत्यन्त प्राचीन है, भग्न है; नीचे के कमरे मिट्टी में डूब-कर सियारों और सर्पों का आवास बन गये हैं। ऊपर चढ़ने को थोड़ी सी सीढ़ियाँ भर बची हैं, जीने का काफी हिस्सा गिर चुका है। दुमंजले पर दालान के फर्श की सुर्खी दो हाथ है तो दो हाथ उखड़ गयी है। दरवाजे, खिड़कियों के (तख्ते) पल्ले कहीं है तो कहीं गायब हैं; छत की बल्ली गिर गयी है, बाँस को फाड़कर उस पर इंटों को रखा गया है। चारों ओर जंगल है। भुतहा मकान यानी सचमुच ही भूत का मकान। सीढ़ी से ऊपर चढ़ने पर उत्तर की ओर अर्थात् दाहिने को जाने पर एक छोटा सा कमरा है (काली तपस्वी का कमरा)। उसके बाद दो सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने पर एक छोटा द्वार और भीतर जाने का रास्ता है। और भी थोड़ा भीतर जाने पर बायीं ओर एक कमरा (ठाकुर का मन्दिर) है, फिर सामने एक लम्बा दालान और दालान के पश्चिम की ओर एक बड़ा कमरा (दानवों का कमरा है। बड़े कमरे के भीतर जाने पर उत्तर-पश्चिम की ओर एक छोटा कमरा है; वहीं पर पानी रखा रहता था और सभी बैठकर भोजन करते थे। उसके भी उत्तर-पश्चिम की ओर शौचालय है। पूर्वोक्त भोजनालय के पूर्व की ओर के एक कमरे में रसोई बनती थी। काशीपुर के उद्यान में श्रीरामकृष्ण देव द्वारा व्यवहृत बिस्तर, तकिया तथा जो अन्य चीजें थीं वे मन्दिर में संरक्षित हुई। उस समय एक भी पलंग न था, अतः फर्श पर ही शय्या की स्थापना हुई थी। दानवों के कमरे में ताड़ के पत्तों से बनी दो-तीन चटाइयाँ जोड़कर फर्श पर

बिछी रहती थी। एक किनारे एक दरी पड़ी रहती थी, जिसके लिए चोर भी विश्वसनीय था; उसमें ताना कहीं था तो बाना कहीं था—मछुए के जाल जैसा। और तकिये के नाम पर उस सस्ती चटाई के नीचे नरम ईंटें रख दी गयी थीं। यहीं सब था उन लोगों के घर का साजो सामान!" इस मठ के दानवों के कमरे में लाटू महाराज रहा करते थे।

एक दिन एक छपरानिवासी आये (बहुतों का अनुमान है कि ये लाटू महाराज के चाचा थे) और उन्हें अपना गाँव देखने जाने को कहने लगे। यह सुनकर लाटू महाराज बोले --"तुम्हारा काम तुम करो, मेरा पथ मैं जानता हूँ।" वे ये बातें इतनी दृढ़ता के साथ कह गये कि वे सज्जन दुखी मन से मठ छोड़कर चले गये। उस व्यक्ति के चले जाने के बाद गुरुभाइयों ने लाटू महाराज से पूछा कि सच बताइए वे आपके चाचा हैं या नहीं? इस पर उन्होंने कहा था --"संन्यासी का चाचा मर गया।"

संन्यास ग्रहण करने के बाद मुण्डित मस्तक और गैरिक वस्त्र पहने लाटू महाराज एक दिन काली तपस्वी के साथ भक्तपालक रामचन्द्र दत्त के घर गये। वहाँ पर स्वामी अभेदानन्द के साथ रामबाबू का साधना के विषय पर कुछ वार्तालाप हुआ। वह वार्तालाप बाद में विविध लोगों के मुख से अतिरंजित हो गया। और विभिन्न लोग इस पर काली तपस्वी को विविध प्रकार से वाक्य-बाणों से विद्ध करने लगे। इस प्रकार के एक गृही भक्त को लाटू महाराज ने कहा "उन्होंने (ठाकुर ने) जिसे जैसा समझाया है, वह वैसा ही तो बोलेगा। कालीभाई को उन्होंने जैसा बताया है, कालीभाई ने वैसा ही कहा है। उसने ऐसा कौन सा दोष किया है कि आपलोग उसे अहंकारी बोल रहे हैं?" कोई अन्य गुरुभाई व्यर्थ ही राम-बाबू की हँसी उड़ा रहे थे, जिसे सुनकर लाटू महाराज ने उनसे कहा --"तुम लोगों को यह क्या हो गया है? रामबाबू की बात तुम्हारे मन-माफिक नहीं हुई, इसके लिए तुम लोग उन्हें कोसोगे, यह तो अच्छा नहीं है। मैं तो उनके यहाँ था, उन्होंने ऐसा कुछ तो नहीं कहा जिससे उनकी बात ठाकुर की बात से विपरीत हो गयी हो। उन्होंने तो उस दिन वह भजन गाकर अपने हृदय का भाव समझा दिया था, 'षड्दर्शन ना पाय दर्शन' इत्यादि। वह भजन तो ठाकुर गाया करते थे।

"बराहनगर में एक दिन मन्दिर के विषय में गुरुभाइयों के बीच बड़ा तर्क-वितर्क हुआ था। उस दिन किसी (गृही) भक्त ने हँसी उड़ाते हुए कहा था, साले और करेंगे ही क्या? जैसे शीतला देवी की स्थापना करते हैं, वैसे ही ये ठाकुर का चित्र रखकर घण्टा बजाएँगे और पुजारीगिरी करेंगे।' भक्त की यह बात सुनकर शशीभाई बड़े नाराज हो उठे और बोले, 'इस प्रकार जो साला कहता है उसके पैसे पर मैं पेशाब करता हूँ। शशीभाई को नाराज होते देखकर लोरेन भाई को बड़ा मजा आता था और वह हँसते हुए कहता, 'जा साले! भिक्षा माँगकर अपने ठाकुर को खिला।' लोरेनभाई की वह बात सुनकर शशीभाई के मन में बड़ा दुःख हुआ, उसने कहा, 'अच्छी बात है! तुम लोगों का एक भी पैसा नहीं चाहिए, मैं भिक्षा माँगकर ही ठाकुर को खिलाऊँगा। इस पर लोरेनभाउ हँसने लगा, 'क्यों! भिक्षा करके अपने ठाकुर को पूरी का भोग दे सकोगे न?' शशीभाई ने (उत्तेजित होकर) कहा, 'हाँ' जरूर दे सकूंगा और उसी भोग की पूड़ी तुम्हें खाने को दूँगा।' तब स्वामीजी भी (उत्तेजना का अभिनय करते हुए बोले, 'ऐसा हो ही नहीं सकता; हम लोग तो खाने को ही नहीं पाते हैं और तेरे ठाकुर पूड़ी भोग खाएँगे? फेंक दूँगा ऐसे ठाकुर को, समझे? तू यदि नहीं फेंक सका तो मैं अपने हाथ से ठाकुर को फेंक दूँगा!' यह कहकर (कृत्रिम रोष के साथ) लोरेनभाई शीघ्रता-

पूर्वक मन्दिर की ओर जाने लगा। शशीभाई भी उछलकर खड़ा हो गया और अंग्रेजी में न जाने क्या कहा। हंसी-ठिठोली में ऐसा तकरार देख कर मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ। मैंने लोरेनभाई से कहा, 'क्यों भाई! तुम क्यों शशी के साथ विवाद कर रहे हो? तुम अपने मत से चलो और शशीभाई को उसके मत से चलने दो।' लोरेनभाई ने मुझे भी डाँट दिया। उसकी डाँट सुनकर मैं ज्योंही एक कड़ी बात कहने जा रहा था कि लोरेनभाई हँस पड़ा। दो मिनट के भीतर सब आपस में मिलजुलकर ठाकुर की पूजा की व्यवस्था में लग गये।"

एक दिन एक वयस्क गृहीभक्त वराहनगर मठ में आये और बड़ी बहादुरी दिखाते हुए, लम्बी चौड़ी हाँकते हुए, युवक-संन्यासियों पर कटाक्ष करते हुए बातें करने लगे।

विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डा० आशीष बनर्जी, वाराणसी

अब तक आत्मा से जो कुछ भिन्न है उसका वर्णन किया गया। अब आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया जायेगा।

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः।
यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तः कैवल्यमश्नुते ॥१२४

परमात्मा के जिस स्वरूप को जानकर अधिकारी साधक समस्त बन्धनों से मुक्त होकर कैवल्य मुक्ति का लाभ करता है, परमात्मा के उस स्वरूप का वर्णन किया जायेगा।१२४

अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः।
अवस्थात्रय साक्षी सन्पञ्चकोश विलक्षणः ॥१२५

पंच कोश से पृथक, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा, मृत्यु पर्यन्त जीव का जो 'मैं-मैं' का ज्ञान होता है उस ज्ञान का साक्षी जड़ पदार्थ समूह से भिन्न, चेतन परमात्मा हैं।१२५

अंह का ज्ञान चेतन वस्तु में ही होना सम्भव है, जड़ में होना असम्भव है। स्वप्न दर्शन के समय कोई भी जड़ वस्तु वर्तमान नहीं रहती, परन्तु उस समय भी 'मैं' का ज्ञान वर्तमान रहता है।

अन्नमय कोष जीव का स्थूल शरीर, प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोष उसका सूक्ष्म शरीर एवं आनन्दमय कोष उसका कारण शरीर है। आत्मा इन सबसे भिन्न है।

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
बुद्धितद्वृत्तिसद्भावमभावमधमंत्ययम् ॥१२६

जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं में ही बुद्धि एवं बुद्धि के वृत्ति समूह की वर्तमानता एवं उनके अभाव को जानता है एवं 'अहं'-ज्ञान के साक्षीरूप में वर्तमान रहता है, वही आत्मा है।१२६

जाग्रत अवस्था में बुद्धि एवं बुद्धिवृत्ति समूह की उपस्थिति का ज्ञान रहता है। स्वप्न में केवल बुद्धि के वृत्ति समूह का ज्ञान रहता है, और सुषुप्ति काल में बुद्धि एवं उसके अभाव का बोध रह जाता हैं। सुषुप्ति से लेकर जागरण के बाद 'मैं था, परन्तु मैं कुछ जानता नहीं था' ऐसा अनुभव होता है। सुषुप्तिकाल मे अन्तःकरण का लय हो जाता है। अतः अन्तः करणण में अहं-बोध नहीं रहता।

अहं बोध आत्मा को आश्रय कर स्थित रहता है।

सुषुप्ति काल में जो अहं प्रत्यय रहता है, उसके आश्रय एवं साक्षी को आत्मा कहा जाता है। यह आत्मा ही सर्वेश्वर है, उससे ऊपर और कुछ नहीं है-इसी प्रसंग का उल्लेख आगे किया जा रहा है :—

यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन।
यश्चेतयति बुद्धियादिं न तु यं चेतयत्ययम् ॥१२७

जो स्वयं सब कुछ देखता है, परन्तु जिसे कोई नहीं देख सकता; जो बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि को प्रकाशित करता है, परन्तु बुद्धि आदि जिसे प्रकाशित नहीं करते वे ही आत्मा है।

"यच्चक्षुषान पश्यति येन चक्षुंषि पश्यति तदेव ब्रह्म त्वम् विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" "नेत्र द्वारा जिसे कोई देख नहीं सकता, परन्तु जिस चैतन्य-ज्योति के प्रभाव से मनुष्य नेत्र के वृत्ति समूह को प्रकाशित होते देखता है उसी को ब्रह्म नाम से जानो। मनुष्य जिसे 'यह' अर्थात् अपने आत्मा से पृथक आनात्म वस्तु रूप मे उपासना या ध्यान करता है वह ब्रह्म नहीं है।

"न दृष्टेद्रष्टारं पश्येन श्रुतेः श्रोतारं श्रृनूया न मते मन्तारं मन्वीथा न विज्ञाते विज्ञातारं विजानीयाः। एप त आत्मा सर्वान्तरोहतोहन्या दार्तम्।" (ऋषि याज्ञवल्क्य, उषन्त, चक्रायन को कहते हैं), "दृष्टि के द्रष्टा को कोई देख नहीं सकता; श्रवण के श्रोता को कोई सुन नहीं सकता; मनोवृत्ति के मननकारी को विचार नहीं कर सकता; वृद्धि-वृत्ति के विज्ञाता को कोई नहीं जान सकता। सबमें अन्तर्निहित वे ही आपकी आत्मा हैं। इस आत्मा से भिन्न और सभी वस्तुएँ विनाश शील हैं।" वृ, ३।४।२ यह आत्मा विश्वव्यापी है:—

येन विश्वमिदं व्याप्तं यन्न व्याप्नोति किंच्चन।
आभारूपमिदं सर्वं यं भान्तमनुभात्ययम् ॥१२८

जिसके द्वारा यह दृश्यमान स्थूल जगत एवं अदृश्य सूक्ष्म जगत परिव्याप्त है, कोई भी वस्तु जिसे व्याप्त नहीं कर सकती, यह विश्व जिसका प्रतिविम्ब स्वरूप है, जिसके स्वयं प्रकाशमान होने के कारण यह विश्व प्रकाशित है, वह ही आत्मा है।

'पादोहस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।"
छा, ३।१२।६

"आकाश आदि चराचर इस ब्रह्म का एक पाद मात्र है इसके अमृत स्वरूप त्रिपाद अपने ज्ञान स्वरूप में प्रतिष्ठित है।" मिथ्या जगत की तुलना में ब्रह्म अनन्त है, इसे समझाने के लिए ही ब्रह्म के अंश की कल्पना की गयी। ब्रह्म एक अंश से केवल विवर्तित होता है, परन्तु अन्य तीन अंशो में वह अमृत या निर्विकार होता है।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोह्यमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥"
क, २।२।१५

"उस ब्रह्म को सूर्य प्रकाशित नहीं करता, चन्द्रमा और तारे भी प्रकाशित नहीं करते, यह विद्युत आदि भी प्रकाशित नहीं करता; यह अग्नि फिर किस प्रकार से प्रकाश कर सकता है? वह ब्रह्म प्रकाशमान होने के कारण ही समस्त वस्तु दीप्तिमान होता है; उसी की दीप्ति विविध रूपों में प्रकाशित होती है।"

आत्मा के स्वरूप के सम्बंध में अबतक जो वर्णन किया गया, उस विषय में तीन आपत्तियां उठायी जा सकती है :—

१. देहादि जैसे अन्य वस्तु को प्रकाशित करने की चेष्टा करता है, आत्मा भी यदि उसी प्रकार जगत को प्रकाशित करने की चेष्टा करे तो आत्मा निर्विकार, कूटस्थ कैसे हो सकता है।

२. आत्मा चेष्टा न करने पर कुछ भी प्रकाशित करने में समर्थ न होगा।

३. देहादिविरहित अपने स्वरूप के द्वारा आत्मा जगत को प्रकाशित करता रहता है तो जगत का ज्ञान चिरकाल मनुष्य को रह जायेगा, अद्वय ब्रह्म का ज्ञान कभी भी न रह जायेगा। अग्रिम श्लोक में आत्म स्वरूप के और वर्णन द्वारा उक्त अपत्तियों का खंडन किया गया है।

वह धन्य हो जायेगा—(२)

—श्री मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत (अल्मोड़ा, उ० प्र०)

युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के प्रमुख गृही भक्तों में से एक श्री रामचन्द्र दत्त का प्रसंग है। वे एक दिन श्रीठाकुर की तपोभूमि दक्षिणेश्वर में श्री ठाकुर के सम्मुख बार-बार शान्ति पाने के लिए आग्रह करते रहे और श्री ठाकुर 'सब हरि की इच्छा' कहते ज्यों के त्यों बने रहे। पर जब राम बाबू किसी भी तरह छोड़ने को राजी नहीं हुए तो श्रीठाकुर संभवतः पहली बार कुछ कठोर होकर उनसे बोले, "मैं न तो किसी का खाता हूँ न लेता ही हूँ। तुम लोगों को यहाँ आने की इच्छा हो तो आना, नहीं तो मत आना।" इस प्रकार की कठोर उपेक्षापूर्ण बात सुनकर भी राम विचलित न हुए परन्तु खानदानी किसान की भाँति श्रीठाकुर के कमरे के उत्तर बरामदे में लेटे 'नामी की अपेक्षा नाम की महिमा अधिक' इस शास्त्र वाक्य का स्मरण करते हुए श्रीरामकृष्ण देवका पतित पावन नाम जपने लगे। तभी आश्चर्यजनक घटना हुई कि गहरी रात में श्री रामकृष्ण देव अपने कमरे से बाहर आये और राम बाबू के निकट बैठकर मधुर सान्त्वनादायक वचनों से उनका सारा विषाद दूर कर दिया। उन्हें वह शान्ति प्राप्त हुई जिसके लिए वे श्रीठाकुर के सम्मुख प्रार्थनारत हुए थे।

हमारी वर्तमान समस्या और भटकाव :— यह प्रसंग हमारे आगे एक नये आलोक की आभा बिखेरता है जो हमें 'अशान्ति से शान्ति' के पथ की ओर जाने में राह दिखाता है। 'शान्ति की खोज' वर्तमान मानव जगत की सबसे बड़ी समस्या है जिसका समाधान किसी को सूझ नहीं रहा। भौतिकवाद की खोखली नींव पर बनने वाले काल्पनिक सुखों के महल भला कहाँ तक किसके जीवन में स्थायी रह सकते हैं ? उन्हें ढ़हना ही है। वे बराबर हम सब के जीवनमें बनते और ढहते चले जाते हैं। परन्तु सुख मृगमरीचिका की भाँति दूरातिदूर भागता चला जाता है और अपने पीछे छोड़ जाता है एक उपहार-- अशान्ति का मुकुट जिसे हमें धारण करना ही पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द जैसा कहते हैं 'सुख अपने सर पर दुःख का मुकुट धारण करके आता है।' इस अशान्ति से मुक्ति पाने के लिए हम जहाँ भी पांव रखते हैं वह एक दलदल की भाँति और अशान्ति में फँसता व भटकता चला जाता है। अन्त में यह भटकाव का कारवाँ हमारे सर्वनाश के साथ ही थमता है।

आज की युवा शक्ति नशे की शरण में अपना समर्पण करते हुए शान्ति की सिद्धि के प्रयास में लगी है। राष्ट्र भौतिकवाद की अंधी' दौड़ बनाम विकास व नव उपनिवेशवाद बनाम कूटनीति के खतरानाक खेल से धर्म व राजनीति का जुआ खेलते हुए आतंकवाद की त्रासदी से जूझ रहे हैं। शिक्षा और संस्कृति इसी लक्ष्य की पूर्ति का साधन बन रही है। हमारे इस भटकाव के कारवाँ का विराम कहाँ ? इस प्रश्न का उत्तर हम प्रत्येक को स्वयं से पूछना व खोजना है। अपने "अहं" के अंधत्व को पहचानने भर का प्रयास जहाँ जिसके भी द्वारा किया जायेगा वहीं एक नया द्वार खुल जायेगा और वहीं से एक नहीं यात्रा का श्रीगणेश होगा। इतिहास साक्षी है सम्राट् अशोक के जीवन में जहाँ उसका 'अहं पराजित हुआ और उसका उसे साक्षात्कार हुआ वहीं धर्म की एक नई यात्रा का शुभारम्भ हुआ जिसने उसे एक प्रकाश स्तम्भ में परिणत कर दिया।

हमारा प्रकाश स्तम्भ : ऐसे ही एक प्रकाश-स्तम्भ की आभा से हमारी आज की सभ्यता आलोकित है। हम चाहे जानें या न जानें सूर्य हमें सदैव प्रकाश देता रहेगा। ऐसा ही प्रकाश स्तम्भ

जो मौजूदा सभ्यता की अशान्ति का एकमात्र समाधान बनकर इस धरा पर अवतीर्ण हुआ—भगवान् श्रीरामकृष्ण उनका पतित पावन नाम है।

श्रीरामचन्द्र दत्त को श्रीरामकृष्ण देव का दिया गया मधुर आश्वासन और सान्त्वना ही हमारे लिए आशा की एक किरण है। यह किरण उस प्रकाश स्तम्भ की एक किरण है जिसके लिए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—श्री ठाकुर के आने अवतार लेने) से सतयुग प्रारम्भ हो गया है। इसका आशय क्या यह नहीं कि श्री रामकृष्ण देव हम सबके लिए एकमात्र आशा की किरण हैं। और हों भी क्यों नहीं ? श्रीरामकृष्णदेव से पूर्व समस्त भावों व मतों की एक छत्र साधना व उदार मत भला किस एक आधार में देखने को मिला ? यह विचारणीय है। तभी तो स्वामी विवेकानन्द जी ने श्री रामकृष्ण देव को 'अवतार वरिष्ठाय' कहा है। अशान्त सांसारिक जीवन के बीच उनके नाम के सिवा ऐसा क्या है जो हमें शान्ति के पथ पर ले जा सकता है ? यही विचारणीय है।

हमें अपने आपको इस प्रकाश स्तम्भ के नीचे खड़ा करते हुए अपने जीवन की अशान्ति रूपी अँधेरी गली में शान्ति की राह खोजनी है। सांसारिकता से भरा जीवन एक भटकाव है, अशान्ति का मूल है। और जीवन का उद्देश्य क्या है ? यह व्यक्तिगत स्तर पर विचारणीय है। मगर राह हमें स्वयं ही खोजनी होगी किसी चमत्कार की अशा न करते हुए। सहायता बाहर से नहीं भीतर से लेनी होगी। अपने भीतर से। और इस सहायता का स्रोत है श्रीरामकृष्ण का नाम। भक्ति व विश्वास। हमारा विश्वास ही हमें अपने जीवन में उनकी कृपा को समझने का हेतु बन सकेगा क्योंकि उनकी कृपा वायु तो चल ही रही है बस हम अपनी नौका का पाल तान भर दें। श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं कहा है—जैसे चन्दामामा सबका मामा वैसे ही ईश्वर पर सबका अधिकार है। जो उन्हें आन्तरिकता के साथ पुकारेगा उसे वे अवश्य शरण में लेंगे और कृपा करेंगे।

हमारी धन्यता का पहला सोपान :—हमारे लिए ऐसी धन्यता का द्वार कैसे खुले ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सामना प्रत्येक को व्यक्तिगत स्तर पर करना पड़ता है और करना पड़ेगा। इस प्रश्न का समाधान भी निजी रूप से ही पाना होता है। मगर उनके आगे अपने हृदय को खोल देना ही उस पथ पर बढ़ने का पहला कदम सिद्ध होगा यह निश्चित है। वे अन्तर्यामी प्रभु सब कुछ जानते हैं परन्तु जब हम स्वयं स्वीकार करते हैं तभी हमारे भीतर वह जागरण पैदा होता है जो हमें स्वयँ के आगे और उनके आगे नंगा खड़ा कर देता है और यहीं से हमारा समर्पण प्रारम्भ होता है और उनकी कृपा का शुभारम्भ भी। परन्तु यही तो कठिन है प्रत्येक जीव के लिए वह चाहे कितना बड़ा पंडित हो, शक्तिशाली हो, धनवान हो, संसार त्यागी हो या कुछ वह अपने दोष हृदय से स्वीकार नहीं करता है। ऐसा करना अपने 'अहं' को चोट पहुँचाना है। भला कौन सत्य के इस कड़वे घूँट को अपने हलक के नीचे उतारेगा ? पर जो ऐसा करता है वह अवश्य ही जाग्रत होता है और जागरण ही धर्म की शुरुआत है व्यक्तिगत स्तर पर। जो ऐसी शुरुआत नहीं कर सकता वह साधु के कमण्डल की भाँति ज्यों का त्यों बना रहता है। जो जाग्रत है वह मुनि है तथा जो सोया हुआ है वह अमुनि।

अतः सर्वप्रथम हमें श्रीश्री रामकृष्ण देव के सम्मुख अपना हृदय खोल देना होगा। हमें अपने समस्त अवगुणों पापों और दुर्बलताओं को स्वीकार कर लेना होगा तथा उनसे सहायता की प्रार्थना करनी होगी। उनके पतित पावन नाम पर अपने अहं का बलिदान कर देना होगा। यही हमारी धन्यता का पहला सोपान सिद्ध होगा और साथ ही हमारे जागरण का बीज रूप भी।

(क) ईश्वर की कृपा

प्रस्तुति : प्रो० सुरेश कुमार मिश्र

जीसस ने कहा – सुनो। कभी-कभी ऐसा हुआ होगा कि अपनी सारी भेड़ों को दिन भर चरा कर कोई सांझ को घर लौटा हो।

शिष्य हाँ।

जीसस – अगर अचानक घर पर तू पाए कि सौ भेड़ों में निन्यानबे ही हैं और एक भेड़ कहीं छूट गयी, मार्ग भटक गयी तो तू क्या करता है ?

शिष्य – मैं निन्यानबे भेड़ों को वहीं छोड़ तुरत जंगल को भागता हूँ कि कहीं उसे भेड़िया न खा जाय, कि रात में उसे कोई कष्ट न हो जाय। मैं निन्यानबे को तो एकदम भूल ही जाता हूँ। लालटेन लेकर अंधेरी रात में चिल्ला-चिल्ला कर, जंगल-पहाड़ छान कर उसे ढूँढ़ निकालता हूँ।

जीसस एक बात और। तू उसे किस तरह लाता है ?

शिष्य कंधे पर रख कर तेजी से लाता हूँ।

जीसस - तू क्या सोचता है कि परमात्मा इतना भी प्रेम तुम्हारे लिए नहीं दिखलाएगा ? परमात्मा पर विश्वास कर और याद रख परमात्मा पुण्यात्माओं और ज्ञानियों को पैदल चला कर ले आता है और पापियों को, भटके लोगों को कंधे पर उठाकर चुमकारते-सहलाते। यही करती है उसकी कृपा।

+

(ख) महाज्ञानी

भगवान ने पृथ्वी बनायी। चाँद-सितारे, हवा-पानी, पशु-पक्षी और मनुष्य बनाये। अंत में गधे को बनाया। भगवान अपनी इस सृष्टि पर मुग्ध थे। सीधा, सादा, मिहनती, मितभाषी और सदा संतोषी गधे को वे सदा अपने साथ ही रखते। भगवान मगर उन दिनों काफी व्यस्त रहते। नयी-नयी सृष्टि थी। काम अधिक। सहायक कोई नहीं। सौ प्रकार के विधि-विधान एवं आदेश तैयार करने थे। वे रोज पेड़ों के पत्तों पर पृथ्वीवासियों के लिए विधान और आदेश लिखकर तह कर रखते जाते। सोचते - किसी आदमी से इसे पृथ्वी पर भेजेंगे। गधा रोज उन्हें यही लिखते देखता।

एक दिन भगवान हारे-थके सोये थे। गधे के मन में अचानक आया - "यदि मैं इन सारी पत्तियों को चबा जाता हूँ तो परम ज्ञानी हो सकता हूँ।" मौका उपस्थित था ही। किताब पूरी होने पर आयी थी। बस, गधे ने सारी पत्तियों को खा लिया।

भगवान सोकर जगे तो किताब नदारद। हुए परेशान। गधे ने कहा – "परेशान नहीं हों आप। अब सारी ज्ञान की बातें मेरे पेट में हैं। पृथ्वी पर आप मुझे ही भेज दें। "खीझे थे ही, भगवान ने भी उसे तत्क्षण पृथ्वी पर भेज दिया। पृथ्वी पर पहुँच कर गधे ने चिल्ला चिल्ला कर कहना शुरू किया – पृथ्वीवालो !! मैं भगवान का संदेश और सम्पूर्ण ज्ञान बाँटने आया हूँ। सब कुछ मेरे भीतर है। आओ।"

मनुष्य पहले तो आश्चर्यचकित हुआ। फिर डंडे से उसने गधे को पिटाई की। कहते हैं – तभी से गधे की यह हालत है। अब सब लोग उसे सिर्फ गधा ही समझते हैं।

+

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा

वार्षिक धर्मोत्सव

छपरा, १० जून। श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा का वार्षिक उत्सव धर्मोत्सव के रूप में आश्रम परिसर में गत ४ जून, १९९० से ८ जून, ९९० तक बड़े भव्य रूप से सोल्लास मनाया गया।

४ जून को इस उत्सव का उद्घाटन करते हुए डॉ० प्रभुनाथ सिंह, पूर्व राज्य मंत्री, बिहार ने स्वामी विवेकानन्द को भारतीय जन चेतना का पुरोधा बताया और कहा कि वे एक महान धार्मिक नेता और राष्ट्रीयता वादी संन्यासी तो थे ही साथ ही देश के औद्योगिक विकास और प्रबंधन नीति में उनके द्वारा दिये गये संदेश भी वर्तमान भारत के विकास में बड़े सहायक होंगे।

सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन, पटना के स्वामी विश्वप्रेमानन्दजी महाराज ने की। आश्रम के अध्यक्ष, श्री राय मनेन्द्र प्रसाद भी जमशेदपुर से आकर सभा में उपस्थित थे।

मुख्य वक्ता के रूप में रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज ने श्री रामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी अद्भुतानन्द के जीवन और संदेश पर विस्तार से प्रकाश डाला जिसका श्रोताओं पर विलक्षण प्रभाव पड़ा।

५ जून की सभा की अध्यक्षता की सारण के जिलाधीश श्री व्यासजी ने। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को भारत के दीन दुःखियों का उद्धारक तथा महान समतावादी संन्यासी बताया और कहा कि स्वामीजी से प्रेरणा लेकर ही वर्तमान भारत प्रगति के मार्ग में आगे बढ़ सकता है।

मुख्य वक्ता के रूप में भाषण करते हुए स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन और संदेश पर प्रकाश डालते हुए कहा कि मार्क्स और फ्रायड की लघु दृष्टि का अतिक्रमण कर स्वामीजी ने विश्व मानव को उसके वास्तविक रूप का परिचय कराया और जाति, धर्म तथा रंग के आधार पर बँटे मनुष्यों में समता के आधार पर त्याग, सेवा और प्रेम का मंत्र फूँका।

६ जून के व्याख्यान का विषय था श्रीराम और श्रीरामकृष्ण। मुख्य वक्ता के रूप में व्याख्यान देते हुए स्वामी निखिलात्मानन्दजी ने कहा कि भक्त के अह्वान पर श्री राम अवतरित हुए थे। पर भगवान के स्वयं के आग्रह पर श्री रामकृष्ण का अवतार हुआ था। दोनों का अवतरण शारीरिक सम्बन्ध से रहित होकर हुआ था। श्रीराम ने धनुष बाण से राक्षसों का नाश किया था पर श्रीरामकृष्ण ने प्रणाम अस्त्र से मनुष्यों के हृदय में रहने वाले विकार रूपी राक्षसों का नाश किया।

श्री महेन्द्र प्रसाद, अधिवक्ता एवं पूर्व अध्यक्ष, छपरा नगर पालिका ने अध्यक्षता की।

७ और ८ जून को स्वामी निखिलात्मानन्दजी ने रामचरितमानस में भक्ति तथा गोस्वामीजी का दैन्यभाव विषय पर क्रमशः प्रवचन दिये। राजेन्द्र कॉलेज के प्रोफेसर डॉ० रामानन्द शर्मा तथा शिक्षा उपाधीक्षक, सारण श्री राजबल्लभ सिंह ने क्रमशः अध्यक्षता की।

स्वामी निखिलात्मानन्दजी के प्रवचनों को जनता ने मंत्र-मुग्ध होकर सुना और मुक्त कंठ से सबने उनकी प्रखर सराहना की।

प्रत्येक दिन प्रो० एस० एन० अग्रवाल तथा डॉ० कुमारी आरती श्रीवास्तव ने भजन प्रस्तुत किये और श्री रामप्रताप सिंह, प्रो० राधाकृष्ण प्रसाद, श्री रामकिशोर श्रीवास्तव तथा डा० उषा वर्मा ने धन्यवाद ज्ञापन किये।

आश्रम के सचिव डॉ० केदारनाथ लाभ ने आगत सज्जनों का स्वागत किया और अंतिम दिन उपस्थित सज्जनों का धन्यवाद करते हुए उनसे आश्रम निर्माण में सहयोग करने की अपील की।

धर्मोत्सव को सफलता में श्रीरामप्रताप सिंह, श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा, श्री शिशिर कुमार मल्लिक तथा श्री अवनीन्द्र कुमार लाभ ने सक्रिय भूमिका निभायी।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१